सातवाँ-अध्याय
हिंदी साहित्यतिहास लेखन में विभिन्न विद्वानों
के योगदान का तुलनात्मक मूल्यांकन
7.1.1 प्रियरसन की साहित्यित्हास दृष्टि
7.1.2 आचार्य शुक्ल की साहित्यित्हास दृष्टि
7.1.3 आचार्य द्रिवेदी की साहित्यित्हास दृष्टि
7.1.4 गणपतिचन्द्र गुप्त की साहित्यित्हास दृष्टि
7.1.5 रामस्वरूप चतुर्वेदी की साहित्यित्हास दृष्टि
7.1.6 बच्चन सिंह की साहित्यित्हास दृष्टि
सातवाँ-अध्याय

7.1 हिंदी साहित्यतिहास लेखन में विभिन्न विद्वानों के योगदान का तुलनात्मक अध्ययन

7.1.1 ग्रियर्सन की साहित्यतिहास दृष्टि

20वीं शताब्दी के आरम्भ से पूर्व हिंदी साहित्यतिहास लेखन के क्षेत्र में जारी आवश्यक ग्रियर्सन का कार्य अधिकृत है। गार्लै-द-तासी तथा शिवसिंह सेंगर के इतिहास से सम्बन्धित इतिहास ग्रन्थों में जो अभाव खटकता है, उसकी पूर्ति ग्रियर्सन ने की। ग्रियर्सन ने तासी तथा शिवसिंह सेंगर के ग्रन्थों के आधार पर ‘द मॉडर्न वनाक्षुलर लिटरेरचर ऑफ गुंडोस्ता’ लिखा तथा हिंदी साहित्य के इतिहास की सामग्री को प्रथम बार कलकातानुसार प्रसंग किया। उन्होंने कवितासंग्रह की परम्परा का अनुसरण करते हुए भी साहित्यतिहास के प्रवृत्तार्थक अध्ययन का प्रयास किया। ग्रियर्सन इसके साथ-साथ साहित्यतिहास के काल विभाग की ओर भी प्रवृत्त हुए। सुमनराज का विचार है, "ग्रियर्सन ने केवल कालों का वर्णन करना ही नहीं किया वरन् उन्हें उपयुक्त नामों से भी विभूषित किया। शुक्ल जी ने आगे चलकर उससे सहयोग लिया। इसके साथ ही कालों की प्रवृत्तियों को स्पष्ट करने का प्रयास उन्होंने किया है।" ¹

ग्रियर्सन की साहित्यतिहास दृष्टि

ग्रियर्सन ने हिंदी साहित्य का इतिहास यूरोपीय लोगों की हिंदी साहित्य की जानकारी देने के लिए लिखा, परन्तु इसमें सचेत नहीं कि उनके प्रयत्नों से पहली बार भारत की आमुनिक भाषाओं और हिंदी साहित्य का वैज्ञानिक रूप में अध्ययन आरम्भ हुआ।

¹ सुमनराज, साहित्यतिहास : संरचना एवं स्वरूप, पृष्ठ-303
सामाजिक दृष्टिकोण

विषयसंन एक विद्वान प्रशासक थे। एक अंग्रेज प्रशासक होने के नाते उन्होंने तासी की भावना अंग्रेजी सामान्य को भारत के राजनीतिक, सांस्कृतिक तथा साहित्यिक जीवन के लिए कल्याणकारी माना है। वे अपने इतिहास प्रयोग के यार्डब्लू हेनर्डोर्फ 'विक्टोरिया की छात्रावाद' में लिखते हैं, "यह पूर्णतया 'भारतीय का भारत' युग का वर्ण न करता है जो आनंदित अशांतियों से मुक्त है, ज्ञान प्रसार और ज्ञान प्राप्ति के लिए जिसमें हर प्रकार का प्रतिसांह दिया गया है। इसका एक परिणाम यह हुआ है कि मुद्रण कला का पूर्ण और विस्तृत प्रसार हुआ है।"

इन पंक्तियों से स्पष्ट है कि उनकी साहित्यिक इतिहास संबंधी दृष्टि को उनके राजनीतिक दृष्टिकोण ने भी प्रभावित किया है। यह बात और अधिक स्पष्ट हो जाती है जब यह बांग्लादेश प्रकारिता में अंग्रेजों के प्रति विरोध के तत्कालीन र्स्ता की निवारण करते हुए लिखते हैं, "यहां भारतीय देशी भाषा के समाचार पत्रों के र्स्ता की और संकेत करने का उपयुक्त स्थान नहीं है। मैं यहां इसकी ओर ध्यान भर आकर्षित कर दे रहा हूं और जानबूझकर इस चर्चा को बचा रहा हूं। यहां इतना अवकाश कह देना बाहर हूं कि बांग्ला पत्रकारिता को कल्याण करने वाले राजनीतिकों और कल्याणी समाजसेवकों की तुलना में, हिंदी समाचार पत्र नियमित और सामान्यतः कहीं अधिक अच्छे हैं।" पंक्तियों से स्पष्ट है कि पत्रकारिता में अवकाश और बुराई का आधार अंग्रेजी भाषा को अच्छा या बुरा मानना इस बात का काल करता है कि विषयसंन ने भी एक सामाजिक राजनीतिक का तरह भारतीय राजनीतिक विचारधिकृतों की अंग्रेजी सामाजिक के पक्ष में आलोचना की है।

सामाजिक दृष्टिकोण

विषयसंन की साहित्यिक इतिहास दृष्टि उनके सामाजिक दृष्टिकोण से भी प्रभावित है।

भक्ति आनंदोत्सव तथा तुलसीदास के महत्व पर विचार करते हुए उन्होंने जो लिखा है, वह

1 विषयसंन, किशोरीलाल गुता (अनुवादक), हिंदी साहित्य का प्रथम इतिहास, पृष्ठ-296
2 बही, पृष्ठ-296
उनकी धार्मिक नैतिकता को समझने के लिए काफी है। ईसाई मत में अगाध विश्वास के कारण ही ग्रीकस्क प्रभक्ति आदोलन को ईसाई मत की दृष्टि मानने के लिए प्रेरित किया। उनकी इस दृष्टि के बारे में आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी लिखते हैं, “ग्रीकस्क का अनुभव है कि वह ईसाईयों की दृष्टि है। ईसी सन की दूसरी या तीसरी शताब्दी में नेशनियन ईसाई मदराल प्रेसीडेंसी के कुछ हिस्सों में आ बसे थे और रामाजनाधार आचार्यों को इसी भक्तों से भाववेश और प्रेमोलास के धर्म का संदेश मिला। यह बात एकदम गलत है। अतः इस अटकल के सहारे फिरत किए हुए मत पर कोई विश्वास नहीं करता, इसलिए इसका उत्तर देना बेकार है।”

इस प्रकार स्पष्ट है कि आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी उनके मत को अनुभव के आधार पर मानते हैं परंतु अब इस बात का कोई महत्त्व नहीं रह गया है। इस प्रकार ग्रीकस्क ने तुलसीदास को सूरदास से महान इसलिए मानते हैं, क्योंकि उनकी नैतिकता ईसाई मत के अधिक निकट है। वे लिखते हैं, “ईश्वर सभ्य में अधि राजकुमार राम की पूजा, पत्नी की पूर्ण प्रतिमा सीता की प्रेमपूर्ण पतिभक्ति और मातृत्व की पूर्ण की कीश्त्वा स्वभाविक वांच से किश्चिति चर्च की उपसना पद्धति के स्वीकार से स्वीकृत होते हैं। यह एक ऐसा सिद्धान्त है …… कि तुम अपने प्रभु, अपने देवता को समूर्ण हड़य से, समूर्ण आत्मा से, समूर्ण शक्ति से और समूर्ण मन से प्यार करो, तथा अपने देवियों को उतना ही प्यार करो जितना स्वयं अपने को करते हो।” साथ ही वे कृष्ण भक्ति का उल्लेख करते हुए लिखते हैं, “वैष्णव धर्म की दूसरी बड़ी शाखा राधा-कृष्ण के परस्पर प्रेम की रहस्यमयी व्याख्या पर निर्भर है। इसका भाय रामकाव्य से उत्तम मित्र है …… अपने ग्रंथवाद रूप में, भी कृष्ण-काव्य रामायण के उपदेशों को उदास तत्त्वों से रहते हैं। आत्म विस्मृति ही नहीं, सब विस्मृति उपसना करने वाले, उस प्रेम स्वरूप प्रेम के चरणों में निविदित दह ऐकात्मिक प्रेम इसका सार है, जो प्रायः स्वारमध्य है। यह ईसाई धर्म के प्रथम और सर्वश्रेष्ठ आदेश की विशेष देता है, तथा परंतु दूसरे आदेश को पूर्णतः भूला देता है। यह दूसरा आदेश इस प्रकार है अपने पदों को

1  आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी, हिंदी साहित्य, पृष्ठ-88
2  ग्रीकस्क, किरोंजीतला गुप्त (अनुवादक), हिंदी साहित्य का प्रथम संशोधन, पृष्ठ-62
उतना ही प्यार करो जितना सत्य अपने को करते हो।”  
इस प्रकार इन पंक्तियों से स्पष्ट है कि इस प्रकार की दृष्टि एक इतिहासकार की नहीं, एक धार्मिक व्यक्ति की ही हो सकती है।

ईतिहासिक दृष्टि

प्रियसर्सन ने साहित्यीतिहास की ईतिहासिक दृष्टि से देखने का प्रयास किया है। उन्होंने तस्वीर की तरह कवियों के जीवन से सम्बन्धित वमतकारों तथा अत्यधिक घटनाओं को उसी रूप में विचित्र नहीं किया। उन्होंने ऐसी घटनाओं को तो कवि कल्पना माना है अतः इन्हें लड़कपन की संज्ञा दी है। तुलसीदास से सम्बन्धित दानकंठाओं का संगीत में वर्णन करने के बाद वे लिखते हैं, “इन लड़कपन से भरी दानकंठाओं के जल से तथ्य के बाल सम्बन्धी निवासीणा साम्प्रदायिक हो सकता है, लड़कन जब तक हमें गोरसाई चरित्र की कोई प्रति नहीं मिल जाती, उन तक पहुंचने की कोई विशेष आशा नहीं की जा सकती।”

प्रियसर्सन ने कथा आदि से सम्बन्धित भक्तमाल में वर्णित असाधारण कथाओं की उपेक्षा की है। जबकि तस्वीर ने ऐसी घटनाओं का विस्तार से साथ वर्णन किया है।

प्रियसर्सन ने अपने इतिहास ग्रन्थ में महान रचिताओं के कृतियों के मूल्यांकन भी ईतिहासिक दृष्टि से किया है। भक्तविद्याओं के महत्व को प्रकाशित करते हुए उनके मूल्यांकन का आधार सामाजिक नैतिकता को बनाया है। इसलिए उनकी दृष्टि को नैतिकतावादी माना जा सकता है। इस बात को उनके द्वारा किए गए तुलसीदास के मूल्यांकन के आधार पर सर्वत्र से स्पष्ट किया जा सकता है। वे लिखते हैं, “इसी प्रकार घोर दिलासिला के युग में, रामायण से बढ़कर मर्यादापूर्ण और पवित्र कोई दूसरा ग्रन्थ नहीं है।”

1 प्रियसर्सन, केशवरामल सुत (अनुवादक), हिन्दी साहित्य का प्रथम इतिहास, पृष्ठ-62-63
2 यहीं, पृष्ठ-139
3 यहीं, पृष्ठ-137
लेखन पद्धति एवं शिल्प

शिक्षार्थी साहित्य के इतिहासलेखन की पद्धति से अच्छी तरह परिचित थे तथा उन्होंने व्यावहारिक रूप में इतिहास का प्रयोग करने का प्रयास भी किया, किन्तु वह अपने ग्रंथ को एक उल्लेखनीय सहीतत्त्वात्मक रूप नहीं दे सके। उन्होंने ख्यातिक भी किया है, "विषय अक्षम विद्वत्ता है और हमारे ज्ञान की वर्तमान स्थिति इतनी सीमित है के ऐसे कार्य का प्रयास कभी नहीं किया जा सकता। अतः मैं इसके एक ऐसे सामग्री-संग्रह के रूप में ही, भेट कर रहा हूँ जो नीव का काम दे सके।"1 परंपराओं से स्पष्ट है कि ग्रंथसंग्रह का इतिहास ग्रन्थ सामग्री संग्रह है, किन्तु ऐतिहासिक बोध तथा साहित्यिक प्रावधान लेखन के शिल्प की दृष्टि से यह हिन्दी साहित्यिक प्रावधान लेखन की नीव अवश्य है।

नामकरण तथा काल-विभाजन

शिवराज सेगर के ग्रन्थ ‘शिवराज सरोज’ की भूमिका में हिन्दी साहित्य के इतिहास की विभिन्न शाखाओं की ओर संकेत भर किया गया था, किन्तु न तो सामग्री को विभिन्न वर्गों में विभाजित किया और न ही अध्यायों में प्रस्तुत किया गया। ग्रंथसंग्रह ने ही हिन्दी साहित्य के इतिहास की विविधता को साहित्यिक वर्गों तथा शाखाओं में विभाजित किया। इसके अन्य ही ग्रंथसंग्रह ने हिन्दी साहित्य का कालविभाजन एवं वर्गीकरण ही नहीं किया, अथवा हिन्दी साहित्य के कालवर्गों का नामकरण भी किया है। चारणकल, संस्कृतकाल आदि नाम साहित्यिक प्रवृत्ति को भी स्पष्ट करते हैं। ये नाम शुल्क जी के लिए भी सहायक हुए हैं। ग्रंथसंग्रह ने अपने इतिहास ग्रन्थ में नामकरण तथा कालविभाजन के लिए प्रवर्तित, समस्त, कया तथा शासक के विभिन्न आधारों को आधार बनाया है, तथा उनका नामकरण किया है।

सामग्री का प्रस्तुतीकरण

ग्रंथसंग्रह ने पहली बार हिन्दी साहित्य की सामग्री को कालवर्गनुसार प्रस्तुत करने का प्रयास किया है। उन्होंने पूर्ववर्ती साहित्यकारों की वर्णोनुसार की पद्धति की तभी

1 ग्रंथसंग्रह, किशोरीलाल गुल्ला (अनुवादक), हिन्दी साहित्य का प्रथम इतिहास, पृष्ठ-54

340
सहायता ली है, जब वे कवि के काल या समय का निर्धारण नहीं कर सके हैं। वे अपने विश्वास का सिद्धांत को स्पष्ट करते हुए लिखते हैं, "सामग्री को यथासम्भव कालक्रमानुसार प्रस्तुत करने का प्रयास किया गया है। यह सर्वांग सरल नहीं रहा है और वक्तव्य स्थलों पर तो यह असम्भव सिख हुआ है। अतएव वे कवि जिनके समय में किसी भी प्रकार नहीं स्थिर कर सका, अन्तिम अध्याय में वर्णानुक्रम से एकसाथ दे दिए गए हैं।"  

कहा जा सकता है कि ग्रंथसन ने जिस समय अपने इतिहास ग्रंथ की रचना की है, उस समय कालक्रम से कवियों का इतिहास लिखना काफी दुःखद कार्य था, फिर भी ग्रंथसन ने कालक्रम से ही कवियों का विवरण प्रस्तुत करने का प्रयास किया है। कवियों का विवरण प्रस्तुत करते समय ग्रंथसन ने जिस पद्धति को अपनाया है, उसे किशोरीचंद गुप्त ने 'हिंदी साहित्य का प्रथम इतिहास' में स्पष्ट किया है, "सर्वप्रथम वे कवि की संख्या देते हैं। क्रम संख्या देने के अन्ततः कवि का नाम देवनागरी अक्षरों में दिया गया है। हिंदी में नाम देने के अन्ततः उसको हर्मन लिपि में भी दिया गया है। नाम के साथ पिता का नाम, वर्तमान का नाम और समय एक साथ दे दिए गए हैं। इसके बाद दूसरे अनुच्छेद में उन संग्रहों का संक्षिप्त नाम दे दिया गया है, जिसमें उस कवि की रचनाएँ संकलित हैं। अन्त में कवि का उपलब्ध इतिहास दिया गया है। किसी कवि के वृत्त में यदि किसी अन्य कवि का उल्लेख आ गया है तो उसकी भी क्रम संख्या सुविधा के लिए कोष्टक में दे दी गई है।" 2 इस प्रकार ग्रंथसन ने लेखन पद्धति का प्रयोग कवियों का इतिहास देते समय किया है।

प्रवृत्तिनिरूपण तथा साहित्यिक विकास के विवेचन की दृष्टि

ग्रंथसन से पूर्व शिवसिंह सेंगर ने हिंदी साहित्य का इतिहास के आरम्भ तथा विकास की आवश्यक अवस्था देखी थी, किन्तु उनका उद्देश्य साहित्य का इतिहास लिखना नहीं था। ग्रंथसन ने सर्वप्रथम हिंदी साहित्य के विकासक्रम को स्पष्ट करने का प्रयास किया था।

1 ग्रंथसन, किशोरीचंद गुप्त (अनुवादक), हिंदी साहित्य का प्रथम इतिहास, पृष्ठ-60
2 वाहे, पृष्ठ-30-31
है। प्रियसंग ने हिंदी साहित्य का आरम्भ बौद्ध काव्य से माना है। उसके बाद धार्मिक पुनरुत्थान को प्रमुख माना है तो सत्रहवीं शताब्दी तक रीतिकाल परम्परा को भी स्पष्ट करने का प्रयास किया है। इसके अन्तर्गत अठारहवीं शताब्दी को हिंदी साहित्य का इतिहास मुख्य माना है। प्रियसंग ने 'कम्पनी के शासन में हिन्दुस्तान' नामक अध्याय में यह बताने का प्रयास किया है, "यह पुनजागृति का, उत्तरी भारत में नए काल के वास्तविक प्रारंभ का, और अब इसने प्रशस्तीकरण कार्य करने वाली आधुनिक दृष्टि की पाटशालाओं के श्रीमणेश का युग था। साथ ही, यह यूरोपियन लोगों को हिंदी नाम से जान और उन्हीं द्वारा अविष्कृत, अद्वैत संकीर्ण भाषण के प्रारूपांक का भी युग था।"1 इन बातों से स्पष्ट हो जाता है कि यह कई भाषाओं के विकास होते हुए भी खड़ी बोली हिंदी के प्रारूपांक तथा उसके साहित्यक्षेत्र में आकर्षक पदरंगण के प्रश्न को अच्छी तरह नहीं समझ सके और उसे नवविकल्प भाषा समझ बैठे। इस युग में यह नई राजनीतिक परिस्थिति की ओर लोहारा ध्यान आकर्षित करते हैं, किन्तु नई साहित्यिक प्रवृत्ति को स्पष्ट नहीं कर पाए।

विवेचन से स्पष्ट हो जाता है कि प्रियसंग ने अपने इतिहास ग्रन्थ के विभिन्न अध्यायों में इतिहास लेखन की पूर्ववर्ती परम्परा के अनुसार कथाओं और लेखकों का जीवन-वृत्त ही नहीं लिखा, परंतु प्राचीन युग की प्रवृत्ति तथा साहित्य इतिहास के विकासक्रम को भी स्पष्ट करने का प्रयास किया है। कही-कही सुनीति परिस्थितियों के संदर्भ में भी साहित्यिक प्रवृत्तियों तथा गतिविधियों को समझने का प्रयास किया है। इस प्रकार प्रियसंग ने साहित्य इतिहास से सम्बन्धित दृष्टि का प्रयोग किया है। प्रियसंग साहित्य-विद्वान साम्प्रदायी दृष्टि पर विचार करने के बाद किशोरीलाल गुप्त के शब्दों में कहा जा सकता है, "प्रियसंग का यह इतिहास ग्रन्थ यथाप्रयोग सरोज का ही व्यवस्थित रूप है, पर सरोज ने हिंदी साहित्य के इतिहासों को जितना प्रभावित नहीं किया, उतना प्रियसंग के इतिहास ग्रन्थ ने किया। 1900 ई. से नागरी प्रचारिणी सम्म, काशी ने हस्तलिखित हिंदी ग्रन्थों की खोज प्रारंभ की। उसकी रिपोर्टों में कथाओं के जो विवरण सनू-समन्त आदि दिए गए हैं,

1 प्रियसंग, किशोरीलाल गुप्त (अनुवादक), हिंदी साहित्य का प्रथम इतिहास, पृष्ठ-24
7.12 आचार्य शुक्ल की साहित्य-इतिहास दृष्टि

आचार्य शुक्ल से पहले के इतिहास ग्रन्थों में किसी में तो अकादमिक से कवियों का परिवह प्रस्तुत किया गया है और किसी में कवियों के जीवनशृंखला के साथ उनकी कविताएं भी दी गई हैं। किसी ग्रन्थ में सामग्री-प्रस्तुतीकरण के लिए कला-विभाजन का सहारा भी लिया गया है पर वह परिक्षात्मक बनकर रह गया है, क्योंकि कवियों और उनकी रचनाओं के विश्लेषण की कमी यहां भी बनी हुई है। कुल मिलाकर कहा जा सकता है कि इन इतिहास ग्रन्थों में हिंदी साहित्य का परिवह भर प्रस्तुत किया है, क्योंकि विकसित और व्यवस्थित इतिहास-दृष्टि का, जो हमें बाद के इतिहास-ग्रन्थों में मिलती है, वहां अभाव है। इस समय तक इतिहास-लेखन का उद्देश्य उपलब्ध प्रसिद्ध कवियों की नामांकन देना और उनकी कविताओं के उद्दरण प्रस्तुत करना ही गुण्य रूप से पाते हैं। इसका एक कारण इस समय तक सामग्री का अभाव था और दूसरा कारण, किसी सुधियाँशित इतिहास दृष्टि का न होना है।

---

1 ग्रामरस, किशोरीलाल गुल (अनुवादक), हिंदी साहित्य का प्रथम इतिहास, पृष्ठ-93
हिंदी नवजागरण के बाद अन्य क्षेत्रों की भावना साहित्य में भी सांस्कृतिक पुनर्जागरण की लहर ने जोर पड़ा और इससे जहां एक ओर अलीग भर गया और ऐसी सामग्री का अधिकारक रुझान हुआ, तो दूसरी ओर ऐसी इतिहास-दृष्टि भी विकसित हुई। जिसके आधार पर कवियों और उनकी रचनाओं का उनके परिवेश में रूपयाकन करने का प्रयास किया गया। साथ ही दूसरी भाषाओं के कवियों और उनकी साहित्यिक प्रगतियाँ का समक्ष रखकर हिंदी साहित्य की प्रगतियाँ का पहचान आकर गया। इस युग में ऐतिहासिक बिवेक से उपलब्ध साहित्यिक सामग्री का वैज्ञानिक वर्गीकरण सम्भव हुआ तथा ठोस साहित्यित्वादकों के आधार पर साहित्यिक प्रगतियाँ का निरूपण करते हुए साहित्यित्वादकों के अविच्छेदन प्रवाह को दिखाने का प्रयास किया गया। आचार्य शुक्ल के इतिहास-लेखन की दृष्टि में इन्हीं बातों को हम देखते हैं। आचार्य शुक्ल ने ही सर्वप्रथम जहाँ प्राचीन स्तंभों और पतनशील मान्यताओं पर चोट की वहीं अपनी परम्परा के प्रगतिशील तत्वों को रखकर किया। आचार्य शुक्ल की साहित्यित्वाद दृष्टि निम्न प्रकार से थी।

साहित्यित्वाद दृष्टि

आचार्य शुक्ल का साहित्यित्वाद दर्शन जीवन तथा जगत सम्बन्धी उनकी धारणाओं से ही निर्मित हुआ है। उन्होंने अपने युग के वैज्ञानिक चिन्तन को आलससत करते ही अपनी धारणाएं बनाईं तथा जीवन, जगत, समाज, सम्पत्ति, धर्म, इतिहास तथा साहित्य को नवीन ज्ञान के प्रकाश में समझने का प्रयास किया। विज्ञानवाद तथा विज्ञान के प्रभाव ने उन्हें वस्तुवादी विचारक बनाया तथा आत्मिक होते हुए भी उन्हें ध्यानिकवाद की ओर उन्मुख किया। रामकृष्ण पाण्डेय के विचारानुसार, “शुक्ल की ध्यान प्रकरिता द्वारा अद्वैत और विज्ञानवादी है। उन पर विज्ञान का गहरा प्रभाव है। विज्ञान की जानकारी, उनकी चिन्ता प्रकरिता एवं जीवन दृष्टि को निर्मित करने में महत्वपूर्ण योगदान दिया है। उसने उनकी दृष्टिकोण को वस्तुवादी और काफी हद तक ध्यानिकवाद बना दिया है।
विकासशील और वस्तुवादी दृष्टि

आचार्य शुक्ल की साहित्यिकता का विकासशील और वस्तुवादी रहस्य है। आचार्य शुक्ल की विकासशील और वस्तुवादी दृष्टि के सम्बन्ध में मैनेजर पाण्डेय ने लिखा है, “आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने इतिहास, दर्शन भाषाशास्त्र, विज्ञान और साहित्य सम्बन्धी नये पुराने चिन्तक की वैचारिक यात्रा करने के बाद एक सुनिश्चित समाजोंमूल्यों, विकासशील वस्तुवादी साहित्य दृष्टि अर्जित की और अपनी इस अर्जित नई दृष्टि से परम्परा का मूल्यांकन, वर्तमान की अवस्थाओं की पहचान और भावी विकास की दिशा खोजने का प्रयास किया। विज्ञान दर्शन, इतिहास, भाषा-विज्ञान, साहित्य और समाज के विभिन्न भागों से सम्बन्धित लेखों तथा पुस्तकों के अनुवाद, सम्पादन और मौलिक लेखन के बीच से उनका जो व्यापक हाल सम्पन्न व्यक्तित्व उभरता है। आचार्य शुक्ल की इतिहास दृष्टि के निर्माण में भारतीय पुर्वजागरण की चेतना सक्रिय दिखाई देती है। इसी चेतना के कारण ही वे भारतीय समाज, संस्कृति, भाषा और साहित्य की परम्पराओं के मूल्यांकन और नए

1 कथा-अंक पंथ, नवम्बर 1975, पृष्ठ-27
2 आचार्य शुक्ल, विनायक (भाग-2), पृष्ठ-126
विकास की सम्भावनाओं की तलाश का प्रयत्न करते हैं।'” 1 इन पंक्तियों से स्पष्ट है कि आचार्य शुक्ल की दृष्टि पर सांस्कृतिक पुनर्जगरण का गहरा असर है। उन्होंने साहित्य में समानता तत्त्वों की परम्परा का विरोध किया और सामने विरोधी व सामाजिक विरोधी साहित्य का समर्थन किया। उन्होंने सामाजिक जनता और साहित्य में सम्बन्ध स्थापित करके साहित्य के समाजोन्मूलक रूप की वकालत की तथा अपनी सांस्कृतिक विरासत का मूल्यांकन करके उसे प्रगतिशील स्वरूप को उजागर किया। इसी आधार को स्पष्ट करते हुए रामलाल सिंह लिखते हैं, “जीवन तथा साहित्य में विकासवाद के सिद्धांत को मानने के कारण वे साहित्य के इतिहास की किसी घटना, किसी कवि की विशेषता, किसी साहित्यिक धारा तथा किसी युग के सामाजिक एवं विशेष लक्षणों को कारणहीन, आक्रमक, असमझ, स्वयंभू अथवा अधूरे निर्मित नहीं मानते, प्रभाव उसे जीवन की विविध परिस्थितियों की क्रिया-प्रक्रिया, धातु-प्रतियात्रा के उपर रहते हैं। वे सामाजिक जीवन की विविध परिस्थितियों को युग-विशेष की साहित्यिक धाराओं, विचारों, धारणाओं का उद्भावक मानने के कारण इतिहास की गतिविधि की नियमन शक्ति को सामाजिक जीवन की विविध परिस्थितियों में देखते हैं।”’

इसके साथ ही आचार्य शुक्ल युग-प्रेरना को भी महत्वपूर्ण स्वीकार करते हैं। वे लिखते हैं, “जबकि प्रत्येक देश का साहित्य वहां की जनता की चित्रणित का संचित प्रतिबिंब होता है तब यह निश्चित है जनता की चित्रणित के परिवर्तन के साथ-साथ साहित्य के स्वरूप में परिवर्तन होता चला जाता है। आदि से अन्त तक इन्हीं चित्रणितों की परम्परा को परखते हुए साहित्य परम्परा के साथ उसका समार्थ सिद्धान्त ही 'साहित्य का इतिहास' कहलाता है। जनता की चित्रणित बहुत कुछ राजनीतिक, सामाजिक, सामाजिक तथा धार्मिक परिस्थितियों का अनुसार होती है। अत: कारणवाद इन परिस्थितियों का निर्धारित विद्यमान भी सामाजिक आवश्यक होता है।”’ 2 इन पंक्तियों से

1 मैनेजर पाण्डेय, साहित्य और इतिहास पृष्ठ, पृष्ठ-92
2 रामलाल सिंह, 'आचार्य शुक्ल के समीक्षा सिद्धांत', पृष्ठ-63
3 आचार्य शुक्ल, हिंदी साहित्य का इतिहास, पृष्ठ-1

346
स्पष्ट है कि आचार्य शुक्ल ने साहित्य को सामाज के दर्पण के साथ-साथ उसके दीपक के रूप में स्वीकार किया है। साहित्य में युगान्त बेष्टना महत्वपूर्ण होती है। साहित्य के माध्यम से उस युग का दिच्छन तथा युग की परिस्थितियां समाज को किस प्रकार प्रभावित करती है और साहित्य पर उसका क्षण प्रभाव पड़ता है। इन सभी बातों को साहित्य की रचनाओं के माध्यम से जाना जाता है। साहित्यकार अपने युग से निरपेक्ष रहते हुए साहित्य की रचना नहीं करता है, क्योंकि साहित्यकार भी समाज का एक अंग होता है और स्वयं युग की परिस्थितियों को भोगते हुए साहित्य की रचना करता है।

आचार्य शुक्ल को विकासवादी तत्वों का पोषक मानते हुए रामविलास शर्मा जी लिखते हैं, “शुक्ल जी ने तत्स्थ होकर डारविन का मत उजूर नहीं किया। वे उस पर अपनी सम्मति भी देते जाते हैं। डारविन ने ‘अच्छी तरह सिद्ध करके दिखा दिया’ कि प्राणियों की जातियों विकास का परिणाम है। विकासवाद और सुन्दर रचनाओं की पौराणिक कथाओं के द्वारा में आचार्य शुक्ल पौराणिक कथाओं के विरोधी है और विकासवाद समर्थक।”1 इस प्रकार शुक्ल इतिहास का अनुमान सामाजिक जीवन सत्य जानने के रूप में तथा उसके विकासशील नियमों के उपाधित करने के रूप में करते हैं। विकासवादी होने के कारण ही वे वस्तुओं को गतिशील एवं विकासशील दृष्टि से देखते हैं।

लोकमंगलकारी तथा मर्यादावादी दृष्टि

आचार्य शुक्ल लोकमंगल व मर्यादा को कव्य में प्रमुख स्थान देते हैं। वे उसी कव्य को मानने के पक्ष में है जो लोकमंगल की धारणा से आत्म प्रति हो। आचार्य शुक्ल उसी कवि को सच्चे कवि के रूप में स्वीकार करते हैं जिसे लोकहदय की पहचान हो और जो विभिन्न विविधताओं के होते हुए भी सामाजिक जन के हृदय को देख सकें। इसी कारण आचार्य शुक्ल के सर्वश्रेष्ठ कवि तुलसीदास हैं। वे लिखते हैं, “अपने दृष्टि विस्तार के कारण ही तुलसीदास जी उत्तरी भारत की समग्र जनता के हृदय मन्दिर में पूर्ण-प्रेम प्रतिष्ठा के साथ विराज रहे हैं। भारतीय जनता का यदि प्रतिनिधि कवि किसी को कह सकते हैं तो इसी महानुभाव को और कवि जीवन का कोई एक पक्ष लेकर चले हैं—जैसे

1 रामविलास शर्मा, आचार्य रामचंद्रशुक्ल और हिन्दी आलोचना, पृष्ठ-12
वारकाल के कवि उल्लाल को, भक्ति के दूसरे कवि प्रेम और ज्ञान को, अलंकार के कवि दाम्पत्य प्रणय या श्रृंगार को, पर इनकी वाणी की पहुंच मनुष्य के सारे भावों और व्यवहारों तक है। व्यक्तिगत साधना के साथ ही साथ लोक धर्म की अत्यन्त उन्नत्र क्षट उसमें वर्तमान है।"  

लोकधर्म धर्म के विषय में आचार्य शुक्ल लिखते हैं, "संसार जैसा है वैसा मानकर उनके बीच से एक कोने को स्पर्श करता हुआ, जो धर्म निकलना वही लोकधर्म नहीं। नजदीक की प्रवृत्तियों का कायम निकालने पर जो मान निर्धारित होता है, वही लोकधर्म होता है।" इस प्रकार स्पष्ट है कि तुलसीदास आचार्य शुक्ल की दृष्टि में इस्लाम महान है क्योंकि उन्होंने अपने काव्य में लोकधर्म को प्रमुखता से वर्णित किया है। लोकधर्म के साथ-साथ लोकमंगल की दृष्टि सुकल के साहित्यिक स्तर में प्रमुख रूप से उजागर होती है। आचार्य शुक्ल के निबंधों, साहित्य के इतिहास में कवियों की आलोचनाओं तथा समीक्षा सिद्धांतों से यह बात सिखा जा रही है कि उनकी दृष्टि में लोकमंगल का आदर्श साहित्य का चरम लक्ष्य है। इसी कारण वे रीतिकालीन दरबारी कवियों पर व्यंग्य करते हुए लिखते हैं, "हिन्दी के रीतिकाल के कवि तो मानो राजाओं के यहां राजाओं की कामवासना उल्लेख करने के लिए ही रखे जाते थे। एक प्रकार के कविराज तो रईसों के मुंह में मकरध्वज का रस झोकते थे, दूसरे प्रकार के कविराज का मकरध्वज की निचकारी देते थे। पीछे से सी गीतमोहर आदि के नुस्खे भी कविलोग लेयर करने लगे।"  

इसी कारण शुक्ल रीतिकाल में रहे गए साहित्य को सर्वश्रेष्ठ नहीं मानते हैं क्योंकि वह अनकल्याण के आदर्श से सम्बन्धित नहीं है। लोकमंगल तथा मयूरदास के सिद्धांत पर ही शुक्ल जी ने हिन्दी साहित्य की उन धाराओं की कटू आलोचनाओं की है, जो लोकमंगल की भावना से प्रेरित नहीं है, अथवा जो व्यक्तिगत है, समाजनिष्ठ नहीं।

1 आचार्य शुक्ल, हिन्दी साहित्य का इतिहास, पृष्ठ-134
2 आचार्य रामचन्द्र शुक्ल, गोविली तुलसीदास पृष्ठ-7
3 आचार्य रामचन्द्र शुक्ल, रस मीमांसा, पृष्ठ-28

348
आचार्य शुक्ल के एकमात्र आदर्श तुलसीदास थे। तुलसीदास व उनके गुण को जितनी आसारी से शुक्ल द्वारा लिखित पुरातत्त्व ‘गोस्वामी तुलसीदास’ के माध्यम से समझा जा सकता है वह अन्यत्र दुर्लभ है। गोस्वामी जी कट्टर मर्यादावादी थे। मर्यादा का भंग दे लेकर उनके लिए भ्रष्टकारी नहीं मानते थे। आचार्य शुक्ल ने भी मर्यादा को सबोच्च स्थान दिया है। मर्यादा में रहकर कार्य करना देते लोकमंगल के लिए अनिवार्य मानते हैं।

आचार्य शुक्ल ने लोकमंगल के अन्तर्गत ही लोकधर्म तथा लोकमर्यादा को स्थान दिया है। व्यक्तिविशेष के जीवन को स्थान देने वाला लोक धर्म नहीं है, वरन् जिस धर्म की दृष्टि में सभी मनुष्य समान है, किसी भी प्रकार के भेद-भाव को मान्यता नहीं दी जाती है, तथा जो धर्म सभी को मान्य है, स्वीकार है, प्रात्मक है, लोकधर्म कहलाता है। शुक्ल जी के साहित्यिक अभिलेख में लोक मर्यादा को भी प्रमुख स्थान दिया गया है। इसी कारण वे रूपितवाद, समकक्षियों की अपेक्षित-फक्कड़ता और कृष्ण काव्यार्थ में उन कवियों की रचनाओं को बहिष्कार करते हैं, जो प्रेम को मर्यादा की दृष्टि से भारी रखते हैं तथा विलासिता और अश्लीलता को प्रश्रेष्ठ देते हैं। शुक्ल जी उसी कला को स्वीकार करते हैं जो कला की अपेक्षा समाज और जनसंस्कृति के महत्व को उजागर करें। शुक्ल जी की दृष्टि लोक जीवन के काम की ओर उम्मीद थी। उन्होंने साहित्य में परम्पराओं, युगीन परिस्थितियों के भावुक सांस्कृतिक दृष्टि, सांस्कृतिक गीत-कविता, ख्यातता-चेतना और सामाजिक उत्थान में जो साहित्य अपना योगदान दे, उसी साहित्य को प्रमुखता दी है। शुक्ल जी ने ऐसे साहित्य को समाज की शक्ति के रूप में स्वीकार किया है।

काल-विभाजन एवं नामकरण

आचार्य शुक्ल की इतिहास दृष्टि का प्रमुख उदाहरण है उनका हिन्दी साहित्य का काल-विभाजन। लगभग एक हज़ार वर्षों के हिन्दी साहित्य को चार काल खंडों में विभाजित करके उन्होंने युगान्तरकारी काम किया है। काल-विभाजन साहित्य के इतिहास-लेखक में एक महत्त्वपूर्ण तत्त्व है। आचार्य शुक्ल से पहले के इतिहासकार सुसंगत और व्यवस्थित काल-विभाजन में अक्षम रहे थे। कुछ इतिहासकारों ने तो काल-विभाजन का प्रयास ही नहीं किया गया तथा अकारादिकम से कवियों और रचनाओं का उल्लेख भर
किया गया है। कुछ इतिहासकारों ने काल-विभाजन करने का प्रयास तो किया है, पर वे भी उसका आधार तय नहीं कर सके हैं। काल-विभाजन की इंटरमिडियेट में ग्रिम्सन और मिश्रव-धुमों के इतिहास लिखे जा सकते हैं। जिनमें काल-क्रमिक और साहित्यिक प्रभावितों को अथवा विशेष व्यक्तियों के नामों को आधार बनाकर मिला-जुला काल-विभाजन प्रस्तुत किया गया है और प्रत्येक काल के नामकरण का प्रयास भी इसी आधार पर किया गया है। ग्रिम्सन के इतिहास में कालखंड प्रभावितों का मिला-जुला वर्णकरण तथा मिश्रव-धुमों ने कालक्रमिक ढंग से हिंदी साहित्य को आठ खण्डों में विभाजन करके काल-विभाजन और नामकरण प्रस्तुत किया, जो अवश्य ही एक सराहनीय कार्य था। लेकिन इन दोनों ही इतिहासों का यह वर्णकरण काल-विभाजन का एक संतुलित और व्यवसित ढांचा प्रस्तुत नहीं कर सका।

आचार्य शुक्ल ने सर्वप्रथम हिंदी साहित्य का एक व्यवसित और तर्कसंगत काल-विभाजन प्रस्तुत करने का प्रयास किया। आचार्य शुक्ल ने काल-विभाजन के नामकरण करते समय एक और साहित्यिक प्रभावितों को आधार बनाया, दूसरी और रचनाओं के कालक्रम की। इस प्रकार शुक्ल जी ने महज विभिन्न कालों के आधार पर ही नहीं, बल्कि मुख्य साहित्यिक प्रभावितों के आधार पर साहित्य का काल-विभाजन प्रस्तुत करने का प्रयास किया। शुक्ल जी साहित्यतिथि की परिभाषा में साहित्य को जनता की चित्रवर्णित का प्रतिविश्व माना है और उसी के आधार पर काल-विभाजन तथा नामकरण प्रस्तुत किया है। आचार्य शुक्ल काल-विभाजन के आधार को स्पष्ट करते हुए लिखते हैं, “जिस कालखंड के भीतर किसी विशेष ढंग की रचनाओं की प्रचुरता दिखाई पड़ी है वह एक अलग काल माना गया है और उसका नामकरण उन्हीं रचनाओं के ख्याति के अनुसार किया गया है।” रूपांतर का जताया है कि शुक्ल जी ने काल-विभाजन का आधार एक और रचनाओं और उनके रचनाकारों के कालक्रम को बनाया है और दूसरी और साहित्यिक प्रभावितों की। उन्होंने दोनों ही आधारों पर साहित्य का काल-विभाजन किया है जो संतुलित और व्यवसित है। साहित्य के विभिन्न कालों के नामकरण में शुक्ल जी ने

1 आचार्य शुक्ल, हिंदी साहित्य का इतिहास, एडिशन-2
इसी आधार का सहारा लिया है। इसके साथ ही शुकल ने नामकरण की दोहरी प्रवृति को भी अपनाया है। काल-विभाजन के लिए दो बातें (रचनाओं का कालक्रम, साहित्यिक प्रवृति) का होना अनिवार्य है। राम विलास शर्मा लिखते हैं, “काल-विभाजन में शुकल जी ने दो चीजें मिलाने की कोशिश की है एक तो कालक्रम, दूसरी किसी साहित्यिक धारा विशेषतः। इन दोनों बातों का अन्तर्यांत्र में रहना चाहिए। हिंदी साहित्य का व्यवस्थित अध्ययन करने में दूसरी बात का महत्व ज्ञान है, पहली का कभी। कालक्रम के हिसाब से कोई रचना आगे-पीछे की साधना हो सकती है, इससे यह साधन होना लातिम नहीं है कि वह किसी साहित्यिक धारा के अन्तर्गत भी नहीं आ सकती।”1 आचार्य शुकल ने दोनों में संगति बिठाते हुए अपने काल-विभाजन में व्यवस्था कायम की। आचार्य शुकल का काल-विभाजन हिंदी साहित्य के लिए महत्वपूर्ण देन है। इसकी उपयोगिता आज भी बराबर बनी हुई है। काल-विभाजन में सर्वाधिक विवादित 'वीरगाथा काल' रहा है। शुकल जी के बाद के इतिहासकारों ने वीरगाथाकाल पर ही आपत्तियां सबसे ज्यादा उठायी है। इस सन्दर्भ में उल्लेखनीय है-राहुल सांस्कृतिक और जनार्दन हिन्देवी, जिन्होंने आदिकाल के साहित्य पर महत्वपूर्ण कार्य किया है। फिर भी शुकल जी के द्वारा किया गया काल-विभाजन तथा नामकरण महत्वपूर्ण है। सुमनराजे लिखते हैं, “उन्होंने अपने आधार रखकर खोजे हैं, अपनी पद्ति रखकर निर्मित की है। यह उनकी सबसे बड़ी गौरवगाम है। उसका सबसे बड़ा प्रमाण तो यही है कि केवल वीरगाथा काल को छोड़कर उनके द्वारा स्वीकृत नाम आज भी प्रचलित है, और विद्वानों ने उन्हें मान्यता दी है। काल का जो विभाजन उन्होंने किया है, उसमें दो एक वर्ष तो लो घटा दिए गए हैं, या बड़ा दिए गए हैं, परन्तु मूल ढांचा ज्यों का ल्यो है।”2 कहा जा सकता है कि आचार्य शुकल द्वारा निर्दिष्ट हिंदी साहित्यिकास का वर्गीकरण और काल-विभाजन हिंदी साहित्यिकास की बहुत बड़ी उपलब्धि है।

1 रामविलास शर्मा, आचार्य शुकल और हिंदी आलोचना, पृष्ठ-185
2 सुमनराजे, साहित्यिकास : संरचना और व्यूह, पृष्ठ-172
प्रस्तुतीकरण

आचार्य शुक्ल ने प्रत्येक युग की सामग्री के प्रस्तुतीकरण के लिए एक व्यवस्थित तथा निश्चित योजना तैयार की है। उन्होंने सर्वप्रथम युग का सामान्य परिचय दिया है। इसके अन्तर्गत उन्होंने परिस्थितियों के संदर्भ में साहित्यिक प्रगतियों और सामान्य विशेषताओं का परिचय दिया है। सामान्य परिचय के पश्चात् वे प्रत्येक काव्यांग्रा अथवा साहित्यिक विधा का अलग-अलग प्रकरणों में निर्दिष्ट करते हैं। यह विवरण दो प्रकार का है: 1. आलोचनात्मक तथा 2. परिचयात्मक।

आचार्य शुक्ल ने आधुनिक युग के अंतरिक्त उन्हें प्रत्येक युग में ‘फुटकल खाता’ खोलना पड़ा है। इसके अन्तर्गत उन कवियों और रचनाओं को समेटा गया है, जो कालक्रम की दृष्टि से उस युग से सम्बन्धित है, किन्तु जिनके द्वारा युग की प्रमुख साहित्यिक प्रगति का पौरोश कभी नहीं होता। इससे संदेह नहीं कि फुटकल खाते के द्वारा इतिहास की एकसूत्रता को आचार्य पदुवा है और परवर्ती इतिहासकारों ने इसे समाप्त भी कर दिया।

सीन्द्र्य दृष्टि

आचार्य शुक्ल एक साहित्यकार होने के साथ-साथ आलोचक भी है। इसलिए आचार्य शुक्ल साहित्यविद्या में सीन्द्र्य दृष्टि को भी महत्व प्रदान करते हैं। वे साहित्य में भाषा, अलंकार, छंद, रस आदि को भी महत्वपूर्ण मानते हैं। आचार्य शुक्ल का मानना है कि इससे रचना में सीन्द्र्य की ऐसी सुधित होती है, जिससे पाठक या श्रीकां के मन पर ऐसा प्रभाव पड़ता है कि रचना से उसे रसदर्श की असीम सता का अनुभव हो जाता है।

तुलसीदास उनके प्रायः कवि इसलिए हैं, क्योंकि इन्होंने अपनी रचनाओं में भाषा, अलंकार, रस, छंद आदि तत्त्वों का ऐसा वर्णन किया है, जिससे विषय में गाम्भीरता तथा सीन्द्र्य की श्रीवृद्धि हो जाती है। पाठक के अन्तर्गत में वह उसी प्रकार समाहित हो जाता है जिस प्रकार पुरुष की मीठी डली अपनी भिटास का आनंद देते हुए असीम सुख को प्रदान करें। आचार्य शुक्ल साहित्यिक कृति को शास्त्रीय समीक्षा की दृष्टि से मूल्यांकित करने के हिमायती हैं।

352
आचार्य शुक्ल की साहित्यित्तत्त्व दृष्टि पर विचार करने के बाद कहा जा सकता है कि साहित्यित्तत्त्व के व्याख्या करते हुए भी वे कही-कही धार्मिक तरंग में बह गए हैं। इतिहासशील ग्रन्थ जहां तक प्रश्न है आचार्य शुक्ल एक बहुत बड़ी सीमा है। वे इतिहास में एकस्पर्श लाने में उतने तलक नहीं हो सके जितने हजारों सदियों द्वितीय अपने साहित्यित्तत्त्व लेखन में हुए हैं। वे दूर्विच्छल परम्परा की तरह जब कवियों के इतिवृत्त संग्रह तथा रचनाओं के उदाहरण देने में प्रवृत्त होते हैं, तब इतिहास की एकसूत्रता में भाषा पहुँचती है। वे कवितासंग्रह की प्रृवित्ति से मुक्त नहीं हो सके। कला-विभाजन करने समय भी आचार्य शुक्ल कही-कही लड़ख़ड़ाए हैं। उदाहरण के लिए वे वीरगाथा काल का अन्त और भक्तिकाल का आरम्भ हमारे देव के शासनकाल से सम्बन्धित करते हैं, जो कि ठीक नहीं है। किर भी आचार्य शुक्ल ने हिंदी साहित्य के इतिहासशील वह एक नया मोड़ दिया वह अत्यन्त सारागमित है। आचार्य शुक्ल की साहित्यित्तत्त्व दृष्टि मुख्यतः लोकमुखी रही है और साहित्ययात्राओं तथा साहित्यित्तत्त्वों का वैज्ञानिक विश्लेषण करने का समाजवर्ती प्रयास किया है।

इस प्रकार कहा जा सकता है कि आचार्य शुक्ल की साहित्यित्तत्त्व दृष्टि साहित्य के प्रति लोकमान्य व्याख्याताओं की तरह युगीन चेतना को भी प्रमुखता के साथ स्वीकार किया गया है। युग की परिस्थितियों तथा परस्पर को भी महत्वपूर्ण माना है। जनता की प्रतिवृत्ति को महत्व देते हुए लोकमण्डल की प्रमुख रूप में स्वीकार करते हुए साहित्य की आत्मा के रूप में स्वीकार किया है।

7.1.3 आचार्य द्वितीय की साहित्यित्तत्त्व दृष्टि

आचार्य शुक्ल ने साहित्यित्तत्त्व को ‘कवितासंग्रह की घटारी’ से बाहर निकाला। विश्वविद्यालय द्वारा हिंदी की उच्च शिक्षा के लिए हिंदी साहित्य के विचार शून्यलाभ इतिहास की आवश्यकता अनुभव करते हुए आचार्य शुक्ल ने विभिन्न युगों की प्रमुख प्रृवित्तियों को आधार मानकर युगों का नामकरण किया और साथ ही युग विशेष की प्रृवित्तियों के साथ ही कवियों की चर्चा की। इस प्रकार के अध्ययन द्वारा आचार्य शुक्ल ने कवियों और प्रृवित्तियों के परस्पर सामीत को अधिक उजागर किया। आचार्य शुक्ल ने
लोक की प्रतिनिधि बिचारधारा अथवा भावधारा पर आधारित युगीन प्रवृत्तियों की खोज की। आचार्य शुक्ल ने ही वास्तव में लोकभिमुख साहित्यिक और वैयक्तिक प्रतिमाओं की स्थापना करते हुए हिंदी साहित्य का निर्माण कार्य करके साहित्य के लेखन का मार्ग प्रशस्त किया। इस प्रकार आचार्य शुक्ल ने लोक जीवन या सामाजिक जीवन की भूमिका पर साहित्यिक प्रवृत्तियों के निरूपण और साहित्यिक प्रवृत्तियों के आधार पर वैयक्तिक प्रवृत्तियों की काय्य रचनाओं को निरूपित किया। विशेषकर आधुनिक साहित्य की विभिन्न प्रवृत्तियों की विविधता के कारण आचार्य शुक्ल को अन्य कालों की अपेक्षा आधुनिक काल को कई उदाहरणों में विभाजित करना पड़ा।

इसके बाद आचार्य हज़ारीप्रसाद द्विदेशी द्वारा लिखा गया इतिहास अपनी अमित छाप लेकर आया। आचार्य द्विदेशी का सबसे पहला इतिहास ग्रन्थ ‘हिंदी साहित्य की भूमिका’ है। जिसकी विशेषता आलोचनात्मक रूप के साथ ही युग्मत: उनकी इतिहास दृष्टि है। इस ग्रन्थ में हिंदी साहित्य को टीका से समझने के लिए हिंदी ग्रन्थों के अतिरिक्त जैन और बौद्ध अपभ्रंश साहित्य, जनीतर के वैदिक तथा दक्षिण और पूर्व के लोकिक क्षेत्र साहित्य आदि को भी परखा गया। इसमें साहित्य के इतिहास को जन धेतना के इतिहास के रूप में व्याख्यातित करने का प्रयास किया गया है। आपकी दूसरी रचना ‘हिंदी साहित्य का आदिकाल’ है। इसमें आदिकालीन हिंदी के प्रारंभिक सम्बन्धी उलझनों को विचित्रित किया गया है, साथ ही इसमें शोध-दृष्टि भी विस्तार किया। उनका तीसरा ऐतिहासिक ग्रन्थ ‘हिंदी साहित्य का उद्भव और विकास’ है। विद्वाणीयों की दृष्टि से लिखा होने के कारण यह ग्रन्थ वास्तविक है। परन्तु आचार्य हज़ारीप्रसाद द्विदेशी ने ध्यान रखा है कि मुख्य प्रवृत्तियों का विवेचन न छूटने पाए और विद्वाणी शोध-कार्यों के आधार तर्क-ग्रंथियों से अप्रतिमता के रहे ग्रन्थ के अंत के बाल्यों और अभ्यासिक विवेचनाओं को छोड़ दिया है जिससे इतिहास नामधारी पुस्तकें भरी रहती हैं। यह हिंदी साहित्य के उद्भव और विकास की कहानी कहने वाला ग्रन्थ है। इस ग्रन्थ में भी आचार्य द्विदेशी की इतिहास दृष्टि के दर्शन होते हैं।

354
साहित्यितिहास दृष्टि

आचार्य श्रुकल ने हिंदी साहित्यितिहास लेखन की जो प्राइड और स्वस्थ परम्परा
चलाई थी, उसकी भी कुछ सीमाएं थी। ये सीमाएं दृष्टिकोण तथा पद्धति से सम्बन्धित थी।
इन सीमाओं को ठीक से पहचानने तथा उनका अतिक्रमण करने में आचार्य द्विवेदी ही
सफल हो सके। उन्होंने अपने इतिहास ग्रन्थों द्वारा इतिहास लेखन को एक नवीन परम्परा
तथा नवीन दृष्टि प्रदान की।

मानवतावादी दृष्टि

आचार्य द्विवेदी की मानवतावादी दृष्टि तथा इतिहास दृष्टि ने ही उनकी
साहित्यितिहास दृष्टि को निर्धारित किया है। वे साहित्य के इतिहास का सम्बन्ध जातीय
संस्कृति से स्थापित करते हैं और उसके स्वरूप को अलग व्यापक मानने प्रारंभ होते हैं।
द्विवेदी जी की जीवन दृष्टि मानवतावादी है जिसे नव आदर्शवाद का आधार प्राप्त है।
द्विवेदी जी का समस्त बिल्लन मानव और उसके कल्याण की ओर उन्मुख रहा है। आचार्य
द्विवेदी सम्पूर्ण मानवता की उच्चतार स्थिति की ओर बढ़ाने में ही इतिहास की सार्थकता
को स्थीत करते हैं। वे लिखते हैं, "मनुष्य दिन-दिन अपने महान लक्ष्य के नजदीक
पहुँचना जाएगा। समाज मानव संस्कृति ऐसा ही दुर्लभ लक्ष्य है। मेरा विश्वास है कि
प्रत्येक देश और जाति ने अपनी ऐतिहासिक परम्पराओं और भौगोलिक परिस्थितियों के
अनुसार उस महान लक्ष्य के किसी न किसी पहलू का अवश्य साधारण करिया है।" इस
प्रकार स्वस्थ है कि हजारों प्रसाद द्विवेदी की इतिहास के बारे में धारणा इस मानवतावादी
दृष्टि से अन्यथा प्रभावित रही है। आचार्य द्विवेदी की मानवतादृष्टि आदर्श से प्रभावित
है। इसी मानवतावादी आदर्शवाद के आधार पर उन्होंने इतिहास और संस्कृति की व्याख्या
की है। मानव की प्रगति में आस्था के कारण की उनकी इतिहास और संस्कृति सम्बन्धी
व्याख्या जैविक नहीं है, जिसके अनुसार किसी संस्कृति की उपस्थि और विकास के
साथ-साथ उनके विनाश की भी कल्याण की जाती है। ये संस्कृति के विकास में बिन

1 आचार्य द्विवेदी, अशोक के पूर्व, 'भारतीय संस्कृति की देवी', पृष्ठ-76
बाधाओं का स्वीकार करते हुए भी उसके धारावाहिक क्रम तथा विकासशीलता की निरन्तरता में विश्वास रखते हैं। आचार्य भिवेदी लिखते हैं, "मनुष्य की जीवनी शक्ति बड़ी निर्माण है। वह संस्कृति और सभ्यता के वात्सल मोहों को रौददी चली आ रही है, संघर्षों से मुनुष्य ने नई शक्ति पाई है। हमारे समान समाज का आज जो रूप है न जाने कितने ग्रहण और लाग का रूप है। देश और जाति की विदुष अंतर्त्र संस्कृति के बाल कार है।"  

इस प्रकार आचार्य भिवेदी ने विभिन्न संघर्षों के माध्यम से विकसित होने वाली मानव-समाज इसी जीवनी शक्ति की विकास गाथा को उजागर करते हुए हिंदी साहित्यिक हस्त के लेखन के नई दिशा तथा दृष्टि प्रदान की है।

व्यापक मानववादी दृष्टि सामान्यत: समन्वयवादी होती है। आचार्य भिवेदी ने भी अनेकानेक प्रभावों और दृष्टिकोणों को समन्वित करके उन्हें अपने मानववादी दृष्टिकोण का अंग बनाया है। इतिहास में सब जीतों में, "श्री हजारीप्रसाद भिवेदी ने आदर्शवाद के धरती पर परस्पर विरोधी विवाहाराओं, परम्परा तथा प्रयोग, संस्कृति तथा सभ्यता, समाज तथा विज्ञान, मानववाद तथा मानवतावाद, गाढ़ी तथा बादल, प्राचीन तथा नवीन जीवन बोध में समानद्वार एवं समन्वय स्थापित कर रखा है।"  

भारतीय संस्कृति की समन्वयवादी वैतना उनके दृष्टिकोण का अभिन्न अंग है।

आचार्य भिवेदी की दृष्टि, समाजनिष्ठ और लोकमंगल की भावना से प्रेरित है। आचार्य भिवेदी का इतिहास, संस्कृति और साहित्य सम्बन्धी दृष्टिकोण भी इसी भावना से प्रेरित है। उन्होंने मनुष्य और समाज का मंगल को ही मनुष्य के सभी कार्यों का लक्ष्य माना। वे देश और समाज के इतिहास की ऐसी व्याख्या नहीं चाहते हैं, जो मनुष्य को निरंशावादी बनाए। वे ऐसी व्याख्याओं को समाज में लिए विष मानते हैं। वे देश के इतिहास की ऐसी व्याख्या के पश्चात हैं, जो समाज को प्रगतिशील बनाने में सहायक हो। आचार्य भिवेदी साहित्य को केवल आममान्यकित या वाणिज्य मात्र नहीं मानते हैं, न ही साहित्य नामधारी वस्तु लोभ और धृष्टा पर आधारित होता है। वे साहित्य सहाचर में

1 आचार्य भिवेदी, अमेरिक ले फूल, पुस्तक-13
2 गणपतिबन्ध गुप्त (स.), ‘आचार्य हजारी प्रसाद भिवेदी’ (आमूल), पुस्तक-2
लिखते हैं, “परंतु साहित्य के विद्यार्थी मात्र को शुरु में ही यह बात समझ लेनी चाहिए कि साहित्य की साधना निकिल विश्व के साथ एकत्व अनुभव करने की साधना है। इससे वह किसी भी अंश में कम नहीं है। जो साहित्य नामधारी वस्तु तोम और धृष्टा पर आधारित है। वह साहित्य कहलाने योग्य नहीं है।”1 आचार्य द्विवेदी साहित्य का सम्बन्ध मानव-जीवन से जोड़ते हैं। उनका मानना है कि साहित्य मानव-जीवन से उत्पन्न होकर संघ मानव जीवन को प्रभावित करता है। आचार्य द्विवेदी की दृष्टि में साहित्य समाज के मंगल का विधायक है। वे मानते हैं कि संस्कृत के और अनुभव, परम्परा और विवेक सामाजिक मूल्यों के साथ-साथ साहित्य के मूल्यों के विकास के मूल में सदैव रहते हैं।

साहित्य का इतिहास केवल साहित्य के लिये ही न लिखा जाकर समाज के लिए भी लिखा जाता है, साथ में आचार्य द्विवेदी परम्परा को भी प्रमुखता देते हैं। कहा जा सकता है कि आचार्य द्विवेदी ने इतिहास, संस्कृति और साहित्य को मानवतावादी आदर्शवाद की दृष्टि से देखा है। आचार्य शुक्ल की इतिहास दृष्टि मुख्यतः वस्तुवादी है और आचार्य द्विवेदी की आदर्शवादी। शुक्ल जी की वस्तुवादी ऐतिहासिक दृष्टि आदर्श-मुख्य और समाजनिष्ठ है, परन्तु आचार्य द्विवेदी की दृष्टि में मानवतावाद के व्यापक रूप में महत्ता मिली है। द्विवेदी की दृष्टि में मनुष्य की समाता और सामूहिक मुक्ति की कामना की है।

साहित्य-इतिहास सम्बन्धी अवधारणा

आचार्य द्विवेदी की साहित्य-इतिहास विषयक धारणा के अनुसार केवल ग्रन्थों और ग्रन्थकारों के नाम संग्रह में ही साहित्य के इतिहास की पूर्णता नहीं हो जाती है। वे साहित्य के इतिहास को ग्रन्थों एवं ग्रन्थकारों के उद्भव और विकास की कहानी नहीं मानते हैं। वे लिखते हैं, “साहित्य का इतिहास ग्रन्थों और ग्रन्थकारों के उद्भव और विकास की कहानी नहीं है वह कल भ्रूण में बद्ध हुए जीवन समाज की विकास गाथा है, ग्रन्थ और ग्रन्थकार उस प्राणराग की ओर सिर्फ इशारा ही करते हैं। वे ग्रन्थ मुख्य नहीं है। मुख्य है वह प्राणराग, जो नाना परिस्थितियों से गुजरती हुई आज हमारे भीतर अपने आपको प्रकाशित कर रही है, साहित्य के इतिहास में हम अपने आपको ही पढ़ने का सूत्र

1 आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी, साहित्य सहचर, पृष्ठ-6
पाते हैं।” 1 आचार्य हिंदेवी ने इसी दृष्टि से हिंदी साहित्यकाल को पुनर्विकासित करते हुए आचार्य शुक्ल द्वारा उपेक्षित युगों और कवियों के विषय में दिया गया प्रस्तुत किया है। आचार्य शुक्ल ने जहाँ विवरणात्मक शैली का प्रयोग करते हुए हिंदी साहित्य लिखा वहीं आचार्य हिंदेवी ने हिंदी साहित्य को सामाजिक एवं सांस्कृतिक पैठीका पर रखकर परखने का प्रयास किया है।

काल-विभाजन एवं नामकरण

आचार्य शुक्ल ने हिंदी साहित्य के आरम्भिक काल को ‘काल’ की दृष्टि से ‘आदिकाल’ तथा साहित्यिक प्रृवृत्ति की दृष्टि से ‘वीरगात्मकाल’ कहा था तथा इस काल का समय 1050 समतुल से 1375 समतुल तक माना था वहीं आचार्य हिंदेवी ने इस पर भिन्न दृष्टि से दिया गया है। उन्होंने आचार्य शुक्ल द्वारा प्रस्तावित ‘आदिकाल’ नाम तो स्वीकार कर लिया है किन्तु काल सीमा में इसकी दसवीं शताब्दी से चौदहवीं शताब्दी तक स्वीकार किया है। आचार्य हिंदेवी आचार्य शुक्ल के द्वारा युग-प्रृवृत्ति विशेष के आधार पर दिए गए नाम ‘वीरगात्मकाल’ के पूर्णतया असहभाव है। आचार्य हिंदेवी ने लिखा है,

“वस्तुतः काल-प्रृवृत्ति का निर्णय प्राप्त ग्रन्थों की संख्या द्वारा नहीं हो सकता, बल्कि उस काल की मुख्य दृष्टिकोण प्रधान अवस्था के आधार पर ही हो सकता है। प्रभाव-उत्पादक और प्रेरणा-संचारक तत्त्व ही साहित्यिक काल के नामकरण का उपयुक्त निर्णय हो सकता है।” 2 प्रस्तुत पंक्तियों के माध्यम से आचार्य हिंदेवी ने ‘प्रभाव-उत्पादक’ और ‘प्रेरणा-संचारक’ शब्दों के प्रयोग द्वारा प्रकारान्तर से समाज के स्वरूप तथा साहित्य की लोक-भावना को ही पहचान दिया है। आचार्य हिंदेवी गानते हैं कि ग्रन्थों की प्रवृत्ति और उनकी प्रतिपदा के आधार पर काल-प्रृवृत्ति का निर्णय नहीं किया जा सकता है, क्योंकि इससे समाज और साहित्य के स्वरूप के व्यापक समन्वय की पुष्टि नहीं होती।

आचार्य शुक्ल ने आदिकाल और आधुनिक काल के बीच का नाम ‘मध्यकाल’ रखा था तो पूर्ववर्ती इतिहास ग्रन्थ ‘मिश्रबन्धु विनोद’ के ‘माध्यमिक काल’ को ‘पूर्व’ और

1 सम्पाल वकिल (भाग 71), पृथ्वी-8
2 आचार्य हजारीप्रसाद हिंदेवी, हिंदी साहित्य का आदिकाल, पृथ्वी-24
‘उत्तर’ में दिखाई देरे देखने का ही समर्थन करता था। शुक्ल जी के पश्चात लगभग सभी इतिहासकारों ने ‘भक्तिकाल’ और ‘रीतिकाल’ का मिला जुला नाम ‘मध्यकाल’ स्थीतिक किया है। आचार्य ढिबेदी जी भी अपने ग्रंथ ‘हिन्दी साहित्य की भूमिका’ में ‘मध्ययुग’ का नामोलेख करते हुए मध्ययुगीनता पर विचार से विचार किया है, परन्तु बाद में अन्तर्विचार के कारण आचार्य ढिबेदी ने ‘हिन्दी साहित्य : उद्भव और विकास’ नामक ग्रंथ में मध्यकाल नाम हटा दिया है।

साहित्यिक मूल्यांकन

साहित्यिक की लेखन में काल-विभाजन, नामकरण और कवियों तथा उनकी रचनाओं के मूल्यांकन के बारे में आचार्य ढिबेदी जी आचार्य शुक्ल की बातों को मानते हुए भी कुछ नयी खोजें की हैं। उन्होंने आचार्य शुक्ल के नामकरण ‘आदिकाल’ और ‘भक्तिकाल’ के मूल्यांकन आदि की दृष्टि से अपनी असहमति व्यक्त की और अपनी मान्यताएं प्रस्तुत की। उन्होंने आदिकाल का नाम ‘वीरगाथा काल’ रखे जाने का विरोध किया और इसे ‘आदिकाल’ कहने ही अधिक उचित बताया। प्राचीन साहित्य की विवेचना में आचार्य शुक्ल के इतिहास से ढिबेदी जी की दृष्टि में भिन्न ही है। उनकी इतिहास दृष्टि की नवीनता वास्तविक रूप में उनके साहित्यिक मूल्यांकन से उजागर हुई है। उनके साहित्यिक मूल्यांकन के केंद्र में सामाजिकता ही अधिक रही है जबकि आचार्य शुक्ल के साहित्यिक मूल्यांकन के केंद्र में साहित्यिकता को ही अधिक महत्व दिया गया है। किन्तु दोनों आचार्यों में किसी एक का अभाव नहीं है। आचार्य ढिबेदी जी आचार्य शुक्ल के काल एवं ‘वीरगाथा काल’, ‘अपभ्रंश काल’ जैसा नहीं स्वीकार किया है। अपभ्रंश के महत्व पर विचार करते हुए आचार्य ढिबेदी लिखते हैं, “इन सब सामग्रियों को देखकर यदि हिन्दी साहित्य के इतिहास लेखकों ने अपभ्रंश साहित्य को हिन्दी-साहित्य का मूल रूप समझ तो ठीक किया है!"। इस प्रकार आचार्य ढिबेदी जी देश भाषा की रचनाओं को भी ‘आदिकाल’ के विवेचना में स्थान देकर शुक्ल द्वारा सिद्धों-नाथों की रचनाओं को साहित्यिक रचनाएँ मानने से इनकार किये जाने का धारणा का संबंध किया है। ढिबेदी

1 आचार्य ढिबेदी, हिन्दी साहित्य : उद्भव और विकास, पृष्ठ-16
का मानना है कि नाथों और सिद्धों की इन रचनाओं में साहित्यकर्ता से अधिक उनकी सामाजिकता का महत्व है। इसी प्रकार जैन धर्म भावना से लिखी गई रचनाओं को भी द्विवेदी ने ‘आदिकल’ के साहित्य में सम्मिलित करके साहित्यिक मूल्यांकन को नई दृष्टि दी है।

भक्ति आन्दोलन और भक्ति साहित्य को नई दृष्टि से परखने का काम आचार्य द्विवेदी ने किया है। खिर्दा, शुक्ल द्वारा व्यक्त भक्तिकालीन आन्दोलन तथा भक्ति साहित्य के रचना विषयक विचारों पर महत्त्वपूर्ण टिप्पणियां प्रस्तुत करते हुए आचार्य द्विवेदी ने इसे नया स्वरूप प्रदान किया है। आचार्य द्विवेदी ‘भक्ति आन्दोलन’ को ‘विरात जन आन्दोलन’ कहते हुए इस युग के साहित्य को ‘जन-आन्दोलन की अभिव्यक्ति का साहित्य’ कहते हैं। उन्होंने कहा है, “इसमें कोई सूचना नहीं कि हिन्दुओं के भीतर इस युग में जन आन्दोलन भक्तिवाद के रूप में बहसें तक हो चला था वह प्राचीन धर्म का आश्रय लेकर ही चला था।”

आचार्य द्विवेदी के अनुसार साहित्य ने यह बार यह तथ्य उल्लिखित कराना अधिक अपेक्षाकृत कठिन नहीं है। साहित्य में जन आन्दोलन का स्वरूप उद्देश्य और मौजूदा स्थिति को सामने लेकर उसके विवाद से प्रभावित रहने से अभिव्यक्ति का आपत्ति का साहित्य ने यह तथ्य उल्लिखित कराना अधिक अपेक्षाकृत कठिन नहीं है।

1 आचार्य द्विवेदी, हिन्दी साहित्य की भूमिका, पृष्ठ-54
2 वही, पृष्ठ-52
लेकिन जोर देकर कहना बाहता हूँ कि अगर ईस्लाम नहीं आया होता तो भी इस साहित्य का बारह आना वैसा ही होता जैसा आज है।" इस प्रकार आचार्य द्विवेदी ने प्रियर्सन तथा आचार्य शुक्ल की मान्यताओं से असहमत होते हुए उन्होंने युगीन राजनीतिक परिवर्तन से साहित्यिक युग का सम्बन्ध नहीं माना है जितना साहित्यिक परिपरा और सांस्कृतिक वित्तनाम से माना है। आचार्य द्विवेदी ने नाटकों, सिद्धों और इससे जुड़े भक्त कवियों तथा यन्त्रों के साहित्य का मूल्यांकन करते हुए आचार्य शुक्ल की स्थानांतरों से असहमति जताई है। आचार्य द्विवेदी वादशिक हिन्दी की शुरुआत भविष्यकाल से मानते हैं, जो कि ठीक नहीं है। आचार्य द्विवेदी ने संतकाल के नामकरण तथा संतकालीन कथा के मूल्यांकन में शुक्ल जी की ही परम्परा का पालन किया है। आचार्य द्विवेदी ने संतकाल के कवियों के मूल्यांकन में अधिक स्वतंत्रता से काम किया है। आचार्य द्विवेदी की मुख्य विशेषताओं के निरूपण में शुक्ल जी से अधिक सफल हुए हैं। हिन्दी साहित्य के एकृतक काल की चर्चा करते समय आचार्य द्विवेदी का ध्यान परम्परा पर अधिक है जबकि आचार्य शुक्ल ने वर्तमान के विवेचन में अधिक स्हि दिखाई है। यही कारण है कि आचार्य शुक्ल के इतिहास के अर्थशास्त्र में एकृतक काल की ही चर्चा की गई है। जबकि आचार्य द्विवेदी ने अपनी पुस्तक ‘हिन्दी साहित्य की भूमिका’ में उपस्थापन में संक्षिप्त चर्चा की है। इसी साहित्य से कारण भारतीय हरिशचन्द्र का नामोलख तक नहीं हो सका है और न ही स्वतंत्रता आदर्शता की चर्चा की गई है। इस कौशल की उद्देश्य है विकास’ में पूरा किया है। आचार्य द्विवेदी ने भी आचार्य शुक्ल की ही भावना एकृतक युग के साहित्यिक विकास को उल्लिखित में विभक्त किया है। आचार्य शुक्ल ने इसकी काल सीमा सन् 1900 से सन् 1980 तक मानते हैं। जबकि आचार्य द्विवेदी ने एकृतक काल को 1900 से 1952 ई. तक नहीं मानते हैं। आचार्य द्विवेदी का इतिहास लेखन काफी महत्वपूर्ण कार्य है जिसे स्वयं आचार्य शुक्ल ने भी स्वीकार किया था।

1 आचार्य द्विवेदी, हिन्दी साहित्य की भूमिका, पृष्ठ-1
आचार्य द्विवेदी की साहित्यिकता हास्य पर विचार करने के बाद कहा जा सकता है द्विवेदी जी ने मूल्यकान के साथ अनुसंधान पर भी जोर दिया है तथा आचार्य शुक्ल के बाद इतिहास लेखन पर आचार्य द्विवेदी ने सार्थक विचार किया है। लेकिन उनकी भी अपनी सीमाएं हैं। हिंदी साहित्य की भूमिका में नामवर सिंह ने लिखा है, "कुल मिलाकर यह ब्रज हिंदी साहित्य की प्रमुख प्रसंस्करणों के उद्र्गम-स्खलन का पता देते हुए बहुत और नवीनता के द्वार-विकास का सहित रचनात्मक कोष है। आधुनिक युग की साहित्य विधायक शक्तियों को पहचानते हुए भी ‘भूमिका’-लेखन ने केवल गतिविधि का संलेख करके संकेत कर लिया है। निस्संदेह 'हिंदी साहित्य की भूमिका' नवीन युग और साहित्य के नवीन इतिहास की भूमिका है।"  

आचार्य द्विवेदी ने परम्परा की क्षीर और उसके रचनात्मक प्रभाव का उचित मूल्यकान किया है। आचार्य द्विवेदी ने हिंदी साहित्य के भक्तिकलाको इस्लाम या ईसाई मत की देर ने मानकर भारतीय दिनता का स्वाभाविक विकास ही माना है। हिंदी साहित्य को सम्पूर्ण भारतीय साहित्य का अभिराम लेकर नए हिंदी साहित्य को परखने की वास्तविक और नई दृष्टि प्रदान की है। आचार्य द्विवेदी साहित्य के इतिहास को मानव की जन मात्रा की विकास कथा कहते हैं उन्होंने भक्ति आन्दोलन को विराट जन आन्दोलन माना है। आचार्य द्विवेदी के इतिहास दृष्टि साहित्यिक विशेषज्ञों की अपेक्षा जन-जीवन की प्रगतिमुखी विशेषज्ञों से अधिक प्रभावित रही है।

7.1.4 गणपतिचत्र गुप्त की साहित्यिकता हास्य

1965 ई. में प्रकाशित धर्मिक साहित्य का वैज्ञानिक इतिहास” हिंदी साहित्यिकता में एक उल्लेखनीय कृति है। इसमें गणपतिचत्र गुप्त ने साहित्यिक इतिहास दर्शन का विवेचन करते हुए साहित्यिक विकास सम्भव दृष्टिकोण को स्पष्ट करने का प्रयास किया है। गणपतिचत्र गुप्त ने इतिहास लेखन के लिए भी दृष्टिकोण की अभिव्यक्तियों को स्वीकार किया है। इसलिए वे लिखते हैं, "इतिहास का सम्भव अतीत की व्याख्या से है

1 नामवर सिंह, इतिहास और अलोचना, पृष्ठ-138
तथा प्रत्येक व्याख्या में व्याख्या का दृष्टिकोण अनुसूचित रहता है। प्रस्तुत इतिहास में प्रस्तुत दृष्टिकोण को “वैज्ञानिक दृष्टिकोण” की संज्ञा दी जा सकती है। इस दृष्टिकोण के अनुसार किसी पुस्तक सिद्धांत या प्रतिपादन नियम के आधार पर वस्तु की तथ्यपरक, सर्वांगीण एवं बौद्धिक व्याख्या सुसंपूर्ण शैली में प्रस्तुत करने का प्रयास किया जाता है।”

इस प्रकार गणपतिचन्द्र गुप्त इतिहास के अध्ययन को बौद्धिक दृष्टिकोण से करते हुए उसका विश्लेषण तर्कसंगत रूप में करने के पक्षधर है। इस प्रकार का अध्ययन, विश्लेषण वैज्ञानिक रूप प्राप्त कर लेता है। इसलिए इस प्रकार के इतिहास को हम वैज्ञानिक इतिहास कह सकते हैं। गणपतिचन्द्र गुप्त ने भी अपने साहित्यिक इतिहास ग्रन्थ में वैज्ञानिक रूप को ही आदर्श मानकर उसी के अनुसूचित सिद्धांत एवं प्रतिपादन को प्रयोग करने का प्रयास किया है। गणपतिचन्द्र गुप्त ने अपने दृष्टिकोण को वैज्ञानिक दृष्टिकोण की संज्ञा दी है। इसी दृष्टिकोण के आधार पर गणपतिचन्द्र गुप्त ने किसी पुस्तक सिद्धांत या प्रतिपादन नियम के आधार पर वस्तु की तथ्यपरक, सर्वांगीण एवं बौद्धिक व्याख्या को सुसंपूर्ण शैली में प्रस्तुत करने का प्रयास किया है। गणपतिचन्द्र गुप्त का मानना है कि प्रत्येक इतिहासकार की ऐतिहासिक दृष्टि विज्ञान सम्पर्क होनी चाहिए। गणपतिचन्द्र गुप्त ने इसलिए अपने साहित्यिक इतिहास ग्रन्थ का नाम भी ‘हिंदी साहित्य का वैज्ञानिक इतिहास’ रखा है।

ऐतिहासिक दृष्टि

गणपतिचन्द्र गुप्त की ऐतिहासिक दृष्टि विकासवादी सिद्धांत से प्रभावित है। वे लिखते हैं, “विज्ञान के अनुसार सुविधा की रचना एकज्ञान नहीं हुई अपतु उसका क्रमशः विकास हुआ है, अतः इतिहास की वैज्ञानिक व्याख्या में भी विकासवादी सिद्धांतों को आधार बनाया जाता है पर विकासवाद के सिद्धांत भी अनेक हैं भौतिक विज्ञान, जीव विज्ञान, मनोविज्ञान, समाजशास्त्र आदि विभिन्न क्षेत्रों में विभिन्न सिद्धांत प्रचलित हैं, दूसरी ओर साहित्य के क्षेत्र में अभी तक कोई विकासवाद सिद्धांत सुविद्विधा नहीं है।

ऐसी स्थिति में मेरे सामने समस्या यह थी कि मैं किस सिद्धांत का अनुसरण कहने-इसके लिए मैंने विभिन्न क्षेत्रों के प्रतिनिधि सिद्धांतों के मुलभूत कार्यालय पर एक ऐसे सिद्धांत

1  गणपतिचन्द्र गुप्त, हिंदी साहित्य का वैज्ञानिक इतिहास, पृष्ठ-4

363
की प्रतिष्ठा का प्रयास किया है जिसे विकासपाद का सामान्य या सार्वभौमिक (शृंखलावाल) सिद्धान्त कहा जा सके तथा जिसे अन्य क्षेत्रों के साथ-साथ साहित्य पर भी लागू किया जा सके। यह नवप्रतिष्ठित सिद्धान्त पांच गुणों में प्रस्तुत है—(1) प्राकृतिक सर्जन-शक्ति (2) परम्परा (3) वातावरण (4) दंड (5) संतुलन। संक्षेप में विकास की प्रतिष्ठा का मूल में कोई न कोई प्राकृतिक सर्जन शक्ति रहती है जो परम्परागत तत्त्वों एवं सामाजिक वातावरण के पारस्परिक दंड से उद्दीपन एवं प्रेरित होकर तब तक सक्रिय रहती है जब तक कि दंड के उभय पक्षों में संतुलन स्थापित नहीं हो जाता है। संतुलन स्थापना ही विकास प्रक्रिया का चरम तत्त्व है।’’[1] इस प्रकार रूपक है कि गणपतिचन्द्र गुप्त की दृष्टि विकासवादी सिद्धान्त से प्रभावित है। इसी नव प्रतिष्ठित सिद्धान्त के आधार पर साहित्य का अध्ययन करने पर जोर देते हैं। इस विकास प्रक्रिया के द्वारा ही गणपतिचन्द्र गुप्त साहित्य का विकास मुख्यतः तीन दिशाओं में मानते हैं। वे लिखते हैं, ‘‘साहित्य का विकास मुख्यतः तीन दिशाओं में होता है—साहित्य मूलों का विकास, साहित्य की आलोचक प्रृत्ति का विकास एवं साहित्य के गुणों (विशुद्ध साहित्यिक तत्त्वों या मूलों का विकास)।’’[2] गणपतिचन्द्र गुप्त की विकास समस्त साहित्यिक आदरण तथा उसकी व्याख्या इतनी वैज्ञानिक नहीं है। दंड सदैव दो विरोधी तत्त्वों में होता है। नवीनता और परम्परा के दंड की व्यतीत कही जा सकती है, परन्तु परम्परा और सामाजिक वातावरण में दंड की धारणा काल्पनिक है। वस्तुतः सामाजिक विकास से निरपेक्ष साहित्यिक विकास की कोई भी धारणा निर्मूल है।

गणपतिचन्द्र गुप्त अपने सिद्धान्त को व्याख्यारिक रूप में परिवर्तित करने में कई जगह असफल रहे हैं। हिंदी साहित्य के इतिहास की व्याख्या करते समय उनका ऐतिहासिक दृष्टिकोण कहीं विचरणवादी हो गया है और कहीं जातिवादी। उनकी भारतीय संस्कृति की परिकल्पना भी हिंदुवादी है। वे लिखते हैं, ‘‘स्त्री क्षेत्र से मुसलमान जातीयों की भारतीय कहा जा सकता है क्योंकि वे भारत की ही भूमि में जन्मे पले थे, किन्तु

1 गणपतिचन्द्र गुप्त, हिंदी साहित्य का वैज्ञानिक इतिहास, पृष्ठ-5
2 वहीं, पृष्ठ-5
उनका सांस्कृतिक आदर्श, सामाजिक दृष्टिकोण एवं जीवन-पद्धति भारतीयता के प्रतिकूल थे।"  इस दृष्टिकोण के परिणामस्वरूप गुद्द जी लिखते हैं, "मध्यकाल के हमारे सामाजिक और साहित्य की शैली ने मूल केंद्र हिन्दू-मुस्लिम सांस्कृतिक धर्म था, जिसके विभिन्न पक्षों को अभिव्यवहारक विभिन्न सांस्कृतिक आंदोलनों, सामाजिक प्रवृत्तियों एवं साहित्यिक धाराओं को सूप में नहीं हुई।"  

इस प्रकार सांस्कृतिक समन्वय के युग को सांस्कृतिक धर्म का युग मानना भी भारतीय दृष्टिकोण है। इस दृष्टिकोण के कारण कही-कही उनकी स्थापनाओं में अन्तर्विश्वास पैदा हो गया है। वे लिखते हैं, "इस दृष्टि से हिंदी को अपभ्रंश की बायतिक उत्तराधिकारिणी के रूप में श्रीकार किया जा सकता है, यह दूसरी बात है कि हिंदी का सौंभाव्य यह तक सीमित नहीं रहा-उसे कई क्षेत्रों में संस्कृत की-प्राचीन काव्य परम्परा, नीति-शैली, मुस्लिम परम्परा एवं काव्यशास्त्रीय विनायक परम्परा का तथा प्राकृत की मुस्लिम परम्परा का भी उत्तराधिकार प्राप्त हुआ है।"  गणपतिचन्द्र गुल्ला जहां एक ओर तो हिंदी की काव्य परम्पराओं और काव्य रूपों को अपभ्रंश आदि पूर्ववर्ती साहित्य का विकसित रूप मानते हैं, तो साथ ही दूसरी ओर ये भी स्थापित करते हैं, "इस समय तक मुसलमान भारत में आगे तक बढ़ आये थे, हिंदू राष्ट्र का विघटन एवं पतन हो चुका था जिसके कारण राज्यशासन में पतने वाले धर्म एवं साहित्य को जनता का संस्कृत एवं जनता की भाषा का माध्यम स्वीकार करने के लिए विवश होना पड़ा था। परम्परागत भाषाएं-संस्कृत, प्राकृत, अपभ्रंश आदि साहित्य और व्यक्तिक के ढाँचे में रूढ़ हो चुकी थीं।"  इस प्रकार गणपतिचन्द्र गुल्ला मानते हैं कि मुस्लिम शासकों के आश्रय में भारतीय संस्कृत एवं साहित्य की पूर्ववर्ती परम्पराओं के पोषित एवं विकसित होने का तो प्रश्न ही नहीं उठता। ऐसी स्थिति में संस्कृत, प्राकृत एवं अपभ्रंश की प्राचीन साहित्य परम्पराओं का
एक-एक दसो-मुखी हो जाना स्वभाविक था। अपानश की काव्य परम्पराओं के इस का कारण राजनीतिक अवस्था को मानना ऐतिहासिक तथ्य नहीं है।

आधुनिक युग तक आते लेखक की भारतीयता सम्बंधी आदर्शवादी दृष्टि और अधिक स्पष्ट हो जाती है। प्रगतिवादी, प्रयोगवादी और नवीन साहित्यिक प्रवृत्तियों को आधुनिकता विरोधी उनका दृष्टिकोण इस बात की ओर स्पष्ट संकेत करता है कि इस युग के विवेचन में उन्होंने पूरी तरह निरपेक्ष दृष्टि को नहीं अपनाया है। उनके विवेचन में गहराई की कमी है। गणपतिचंद्र गुप्त ने प्राकृतिक में ही आधुनिकता विरोधी स्वर को स्पष्ट करते हुए लिखा है, "जहां आदर्शवादी साहित्यकार उच्च कोटि का साहित्य सर्जन करते हुए भी प्रचार की दृष्टि से निष्क्रिय एवं मोड़ है, वहां यथार्थवादी एवं अत्यथार्थवादी साहित्यकार सामूहिक एवं संगठित रूप में अपना ठोल पीटने में लगे हुए हैं। इस ठोल के कर्नेल स्वर के सम्पूर्ण सभी कोेमल राणियां अश्रव्य हो गई हैं। यह राष्ट्र का दुर्भाग्य है कि आज आधुनिकता, नवीनता और यथार्थवादिता के नाम पर कुलित, अश्लील, कृष्णास्त, आदमीता, समाजविरोधी एवं आर्थ-शून्य साहित्य की प्रोत्साहन एवं प्रशंसा दिया जा रहा है जबकि व्यापक अनुभूतियों, गम्भीर भावनाओं एवं उदात्त विचारों से अनुप्राणित साहित्य को ‘आदर्शवादी’, ‘कल्पनिक’, ‘पुरातत्ववादी’ एवं परम्पराग्रस्त कहकर उपेक्षित एवं तिरस्कृत किया जा रहा है।'। इस प्रकार स्पष्ट है कि गणपतिचंद्र गुप्त आधुनिक युग में यह स्पष्ट नहीं कर सके कि उदात्त विचारों से अनुप्राणित साहित्य कहां है जिसकी आधुनिक युग में साहित्य की उपेक्षा हो रही है।

काल-विभाजन एवं नामकरण

गणपतिचंद्र गुप्त ने शालिबंध सुरी कृत ‘भरतेश्वर बाहुबली रास’ को हिंदी की प्रथम रचना मानकर 1184 ई. से हिंदी साहित्य के इतिहास का आरम्भ माना है। गुप्त जी ने पूर्ववर्ती नामकरण एवं काल-विभाजन का विचार करते हुए दिशित काव्य-प्रवृत्तियों को युगों में सर्वाधिक तथा सम्पूर्ण रूप में रखने के लिए इस प्रकार के नामकरण एवं कालविभाजन को उचित मानते हैं।

1 गणपतिचंद्र गुप्त, हिंदी साहित्य का वैज्ञानिक इतिहास, पृष्ठ-11
<table>
<thead>
<tr>
<th>संख्या</th>
<th>काल</th>
<th>समय अन्तरिक्ष (ई.)</th>
</tr>
</thead>
<tbody>
<tr>
<td>1.</td>
<td>प्रारंभिक काल</td>
<td>सन् 1184-1350</td>
</tr>
<tr>
<td>2.</td>
<td>मध्यकाल</td>
<td>सन् 1350-1857</td>
</tr>
<tr>
<td>(i)</td>
<td>पूर्व मध्यकाल</td>
<td>(1350-1500)</td>
</tr>
<tr>
<td>(ii)</td>
<td>मध्यकाल</td>
<td>(1500-1600)</td>
</tr>
<tr>
<td>(iii)</td>
<td>उत्तर मध्यकाल</td>
<td>(1600-1857)</td>
</tr>
<tr>
<td>3.</td>
<td>आधुनिक काल</td>
<td>सन् 1857-1965</td>
</tr>
</tbody>
</table>

गणपतिचन्द्र गुप्त ने हिंदी साहित्य के इतिहास में नामकरण एवं काल-विभाजन की समर्थन को हल करते हुए जो नामकरण एवं काल-विभाजन का प्रयास किया है, वे न तो मान्य हो सका और न ही लोकप्रिय हो सका। गणपतिचन्द्र गुप्त ने प्रवृत्ति के आधार पर नामकरण एवं काल-विभाजन की जो विरोध किया था, वह भी पूरी तरह मान्य नहीं हो सका, क्योंकि प्रवृत्ति के आधार पर नामकरण एवं काल-विभाजन भी एक उपलब्धि है। उसका ल्याग जरूरी नहीं है। यह ठीक है कि प्रमुख प्रवृत्ति के साथ उस गुप्त की अन्य प्रवृत्तियों को भी समुचित स्थान मिलना चाहिए। गणपतिचन्द्र गुप्त ने ‘भवितकाल’, ‘रीतिकाल’ नामकरण का विरोध करते हुए जिन ग्यारह काव्यधाराओं का वर्णन किया है।

वे धाराएं भी आपस में उलझ कर रह गई हैं। हिंदी की काव्यधाराओं के पौराणिक प्रबन्ध काव्य परम्परा, पौराणिक गीति काव्य परम्परा आदि नाम भी अधिक सार्थक प्रतीत होते और न ही मान्य हो सके।

प्रस्तुतीकरण की योजना

गणपतिचन्द्र गुप्त न अपने साहित्यितिहास प्रन्थ में प्रस्तुतीकरण की योजना जिस रूप में की है, प्रायः शुक्ल जी जैसी है। सामान्य परिचय के पश्चात काव्य परम्परा का विवेचन किया है। विवेचन भी पूरी तरह से स्पष्ट नहीं है जिन्हें शुक्ल जी का है। विवेचन में अन्तर्विरोध आ गए हैं, जिनकी ओर डा. सुमनराज ने भी ध्यान आकर्षित किया है।

काव्य परम्परा के विवेचन के पश्चात कवियों के जीवन वृत्ति एवं उनकी कृतियों का सोशालियन वर्णन किया गया है। हिंदी का काव्य परम्पराओं-पौराणिक प्रबन्ध काव्य
परम्परा, पौराणिक गीत काव्य परम्परा, शास्त्रीय मुक्तक काव्य परम्परा, रसिक भक्ति-काव्य परम्परा, आदि नाम भी अधिक सार्थक प्रतीत नहीं होते।

इन सभी बातों का अध्ययन करने पर कहा जा सकता है कि गणपतिचन्द्र गुप्त के साहित्यतिथियाँ ग्रंथ द्वारा भी हिंदी साहित्यतिथियाँ लेखन में कोई सार्थक परिवर्तन नहीं आया। जैसा कि इसके शीर्षक और प्रथम खण्ड को पढ़कर सम्भावना बनती है। यह सत्य है कि गणपतिचन्द्र गुप्त का साहित्यतिथियाँ ग्रंथ न ही मान्य और न ही पर्याप्त लोकप्रिय हो सकता, फिर भी इस ग्रंथ का महत्व इस दृष्टि से है कि उन्होंने आचार्य शुक्ल के साहित्यतिथियाँ ग्रंथ के बाद हिंदी साहित्य से सम्बन्धित जो सामग्री, स्रोत प्रकाश में आए हैं, उस सामग्री तथा रचनाओं की प्रामाणिकता के आधार पर बीरगण्य काल, भविष्कं, रीतितत्त्व रोजमेज़ प्रचलित अनेक मान्यताओं का निराकरण करते हुए नई मान्यताओं, श्रापानाओं, प्रवृत्तियों के उद्देश्य और स्रोतों की व्याख्या के सम्बन्ध में नई दृष्टि से सोचने का प्रयास अवश्य किया है तथा हिंदी साहित्य की नई दृष्टि से देखने और परखने के लिए अवश्य ही प्रेरित किया है। इस दृष्टि से उनके साहित्यतिथियाँ ग्रंथ की सार्थकता को स्वीकार किया जा सकता है कि उन्होंने ज्ञान के नए प्रकाश में हिंदी साहित्य को देखने का प्रयास किया है और पूर्व प्रचलित मान्यताएं जो अब ठीक नहीं ठहरती हैं, उनका निराकरण करते हुए साहित्यतिथियाँ को नये तरीके से प्रयास देखने का अवश्य किया है।

7.1.5 रामस्वरूप चतुर्वेदी की साहित्यतिथियाँ दृष्टि

हिंदी साहित्यतिथियाँ लेखन-परम्परा में रामस्वरूप चतुर्वेदी का साहित्यतिथियाँ ग्रंथ अपना एक अलग स्थान रखता है। रामस्वरूप चतुर्वेदी हिंदी साहित्य के इतिहास को राष्ट्रीय महत्व के साथ-साथ, मानव-समाज के विकास के रूप में मानते हैं। वे हिंदी साहित्य को एकता और सर्वभौम सम्भाव्य की रक्षा के रूप में मानते हैं और भारतीय समाज के पुनर्जीवन के इतिहास के रूप में स्वीकार करते हैं। 1986 ई. में लोकभारती से प्रकाशित 'हिंदी साहित्य और संवेदना का विकास' हिंदी साहित्यतिथियाँ परम्परा का एक महत्वपूर्ण बिन्दु है। वे अपने साहित्यतिथियाँ ग्रंथ ‘हिंदी साहित्य और संवेदना का विकास’ का अर्थ स्पष्ट करते हए लिखते हैं, "इतिहास में बल इतिहास पर होता है,
विकास में इतिहास के उस अंश पर जहां दिखाया जाता है कि एक युग अपने पिछले युग से, और एक रचनाकार कालक्रम में अपने पहले से रचनाकार से कहां और क्यों भिन्न तथा विशिष्ट है। भाषा, साहित्य और संस्कृति के अन्तर सम्पर्क से हिन्दी क्षेत्र और वहां के जन-समुदाय की संवेदनाओं को निर्धारित करने में प्रतिवेदित करता है। यह इस समूह के अध्ययन की अस्तित्वता है।”

इस प्रकार रामस्वरूप चतुर्वेदी जी अपने साहित्य के इतिहास के अध्ययन के स्वरूप को स्पष्ट करते हैं तो साहित्य के दायित्व की ओर प्रकाश डालते हुए लिखते हैं, “‘संसार को समझना दर्शन का काम है, उसे बदलना राजनीति का, और उसकी पुनर्रचना करना साहित्य का दायित्व है।’”

इस प्रकार रामस्वरूप चतुर्वेदी जी साहित्य के इसी रूप में साहित्य के विकास को समझने का प्रयास करते हैं। साहित्य के दायित्व के साथ-साथ वे साहित्यकार के दायित्व को स्पष्ट करते हुए लिखते हैं, “कवि का काम यदि ‘दुनिया में ईश्वर के कामों को न्यायोपित ठहराना है’ तो साहित्य के इतिहासकार का काम है कवि के कामों को साहित्यित्वता की विकास-प्रेरक विद्या में न्यायोपित दिखा सकना।”

इस प्रकार साहित्यकार के दायित्व को रामस्वरूप चतुर्वेदी जी स्पष्ट करते हैं कि साहित्यकार कवि की रचनाओं में अर्थ का संदर्भ करता है और उसे संबद्ध करता है। इस प्रकार रामस्वरूप चतुर्वेदी रचना, आलोचना और साहित्यित्वताका मानवीय जिज्ञासा की अद्वितीय अभिव्यक्ति के लाभ-साथ उसके जीवन में अर्थ-संदर्भ के क्रिया चरण के रूप में मानते हैं।

उन्होंने लिखा है, “इतिहासकार का यह दायित्व है कि इन दोनों गुणों (युगीन तथा समकालीन) का रिश्ता और क्रिया-प्रेरक विद्या स्पष्ट करते हुए वह रचनाकार के सम्प्रेषण को प्रशान्त करे, और व्यापक परस्पर के अन्तर्गत उसका मूल्यांकन करे। इतिहास की इस प्रेरक विद्या को स्पष्ट करने के लिए यह भी जरूरी है कि हम युग विशेष की संवेदना समझें, और उस युग के साहित्य में उसकी साहित्यित्व का विशेषण कर सकें। अभी तक के -

1 रामस्वरूप चतुर्वेदी, हिन्दी साहित्य और संवेदना का विकास, आमूँ, पृष्ठ-9
2 वहीं, पृष्ठ-9
3 वहीं, पृष्ठ-24

369
इतिहासों में सांस्कृतिक पुष्टभूमि का इतिवृत्त कथन अलग होता है; और साहित्य धारा का विकास अलग यहां प्रयत्न यह है कि साहित्य और संवेदना को एक साथ देखा-परखा जा सके। आचार्य शुक्ल ने अपने इतिहास के आमुख में ‘जनता की चित्त्रवृत्ति के परिवर्तन’ की बात कही थी। आज की भाषा में यह चित्त्रवृत्तियों के संश्लेष को संवेदना कहा जाएगा। संवेदना के बदलाव को समझने से साहित्यिक दृष्टि की परिक्षणा, और उनके दृष्टि के महत्त्वपूर्ण अंतरालों को समझा जा सकता है। जो साधारण दृष्टि के लिए ओझाल बने रहते हैं। इसलिए साहित्य के प्रकाश के साथ-साथ संवेदना के विकास को रेखांकित करना इतिहासकार के कर्म का आवश्यक अंग है।”

इस प्रकार स्थाय है कि रामस्वरूप चतुर्वेदी जी ने हिन्दी साहित्य के इतिहास के विकास की संवेदना की दृष्टि से देखने का प्रयास करते हैं और पूर्वकालिक संवेदनाओं की परम्परा की आपेक्षा साहित्य और संवेदना को साथ-साथ देखने से प्रयास करते हैं न कि अलग-अलग करके। चतुर्वेदी जी की साहित्यित्तिहास दृष्टि अधिकांशतः आचार्य शुक्ल की साहित्यित्तिहास दृष्टि का अनुसरण करने का प्रयास करती है। उनकी दृष्टि आचार्य शुक्ल की दृष्टि को समझ करने का प्रयास करती है।

काल-विभाजन और नामकरण

काल-विभाजन और नामकरण में रामस्वरूप चतुर्वेदी आचार्य शुक्ल की ही परम्परा का अनुसरण करते हैं। नामकरण को वे प्रमुख प्रवृत्ति के आधार पर ही स्थीर करने के पक्षधर है। काल-विभाजन तथा नामकरण के सम्बन्ध में वे कोई नया, निष्कर्ष, सिद्धांत या नई स्थापनाओं की स्थापना नहीं कर सकते हैं। रामस्वरूप चतुर्वेदी जी ने काल-विभाजन तथा नामकरण के विषय में शुक्ल जी की जो मान्यताएं थीं, उनको स्थापित करने के लिए नये निष्कर्षों के आधार पर स्थापित करने का प्रयास करते हैं तथा आचार्य हिंदेदी की मान्यताओं का खण्डन करते हैं।

1 गणपतिचन्द्र गुप्त, हिन्दी साहित्य का वैज्ञानिक इतिहास, पृष्ठ-24
प्रस्तुतीकरण की योजना

रामस्वरूप चतुर्वेदी प्रस्तुतीकरण की योजना जिस रूप मे अपने साहित्येतिहास मे अपनाते हैं, वे पूर्ववर्ती पत्रकार का अनुसरण नहीं, बल्कि रामस्वरूप चतुर्वेदी जी इसे आधुनिक युग के साहित्य के इतिहास की नयी महत्वाकांक्षा कहते हैं। वे लिखते हैं, "इस दृष्टि से व्रत यहां सर्पिली न होकर चयनधमी है और युग का विश्लेषण तथा विवेचन प्रतिनिधि रचनाकारों के आधार पर हुआ है। यदि विवेचन वही परिप्रेक्ष्य में हुआ है तो अलग से फिर मूल्यांकन की अपेक्षा नहीं रह जाती। संवेदनायक विकास को समझने में सुविधा हो इसलिए कवि कीर्तन की बजाय कविता-कीर्तन की दृष्टि यहां प्रमुख है।”

इस प्रकार रामस्वरूप चतुर्वेदी की प्रस्तुतीकरण की योजना अवश्य ही नयी दृष्टि से प्रभावित है। वे अपने साहित्येतिहास प्रथा के साहित्य के इतिहास के साथ-साथ साहित्य के रूप में व्यापकता करने का प्रयास करते हैं। वे अपने प्रथा में भाषा और साहित्य के साथ-साथ तथा उनके माध्यम से हिंदी भाषी-जाति के जीवन-मूल्यों के विकास को भी रेखांकित करने का प्रयास करते हैं। भाषा, साहित्य और संस्कृति से युक्त उनका हिंदी साहित्य का इतिहास होने के साथ-साथ हिंदी संवेदना का इतिहास होने का भी प्रयास करता है। इस प्रकार रामस्वरूप चतुर्वेदी । साहित्येतिहास में प्रस्तुतीकरण पूर्व प्रचलित परम्परा की अपेक्षा नये आधार पर करने का प्रयास करते हैं।

इस प्रकार कहा जा सकता है कि जहां तक साहित्येतिहास से सम्बन्धित दृष्टि का सवाल है, प्रस्तुतीकरण की योजना के अतिरिक्त अधिकांश आचार्य शुक्ल की ही दृष्टि की पूरक के रूप में समझे आती है। इसके साथ ही साथ साहित्य के इतिहास को संवेदना की दृष्टि से देखने का प्रयास अवश्य ही उनकी उपलब्धि है। इतिहास का प्रस्तुतीकरण भी उनकी इतिहास दृष्टि की एक प्रमुख विशेषता है। रामस्वरूप चतुर्वेदी जी इतिहास दृष्टि अवश्य ही हिंदी साहित्य को नई दृष्टि से देखने तथा परखने का प्रयास करती है। अत: सार रूप में कहा जा सकता है कि रामस्वरूप चतुर्वेदी जी साहित्य में संवेदना को प्रमुख स्थान देते हैं और वे मानते हैं कि चित्रवृत्तियों का संशोधन ही संवेदना है। रचनाकार

1 रामस्वरूप चतुर्वेदी, हिंदी साहित्य और संवेदना का विवेचन, आधुन, पृष्ठ-9
गुण-विशेष की संवेदना को समझकर अपनी रचना में उसे प्रतिबिंबित करता है। संवेदना का बदलाव साहित्यक गुणों के बदलाव का साधी होता है। इसलिए रामस्वरूप चतुर्वेदी साहित्य के इतिहास के विकास के साथ-साथ संवेदना के विकास की रोलिक करना इतिहासकार के कर्म का आवश्यक अंश मानते हैं। इस प्रकार रामस्वरूप चतुर्वेदी की इतिहास दृष्टि का प्रमुख आधार साहित्य को संवेदना की दृष्टि से देखने में है।

1996 ई. में बच्चन सिंह का इतिहास प्रथा ‘हिन्दी साहित्य का दूसरा इतिहास’ हिन्दी साहित्येतिहास लेखन परिप्रेक्ष्य में एक महत्वपूर्ण पुस्तक है। आज सांस्कृति इतिहास को लेकर बहसे चल रही है इस बहस के दौरान मध्यकालीन लेख-जागरण से लेकर आधुनिक नव-जागरण तक साहित्य और संस्कृति से सम्बन्धित नई साम्राज्य उद्भवों और प्रवर्तियां सामने आई है। इस पृष्ठभूमि में आचार्य श्रुकल ओर हजारीप्रसाद द्विवेदी के बाद हिन्दी साहित्य के इतिहास पर भी समस्याओं पर बहसे उठी हैं। इन बहसों के सन्दर्भ में बच्चन सिंह ने एक महत्वपूर्ण प्रयास के सूची में ‘हिन्दी साहित्य का दूसरा इतिहास’ लिखा है। इस इतिहास प्रथा का अभ्यास करने के बाद दो बातें प्रमुख रूप से सामने आती हैं। पहली, दूसरी परम्परा का इतिहास और दूसरी, आचार्य श्रुकल के बाद विविधता लिखा हुआ दूसरा इतिहास। बच्चन सिंह ने पाठकों की अपेक्षाओं को ध्यान में रखते हुए प्राचीन साहित्य की नई बहसों और समकालीन साहित्य के अनेक महत्वपूर्ण रचनाकार के समेट कर ‘हिन्दी साहित्य का दूसरा इतिहास’ लिखा है। वे भक्तिकल में दक्षिण भारत आलवाद सन्तों की परम्परा और हिन्दी कविता का साहित्य परिचय जोड़कर तथा गीर-जाेजी-गलिब की यथायोग्य वर्णन उन्होंने अपने इतिहास के दायरे की व्यापक बनाया है। वे हिन्दी साहित्य को व्यापक मानने के साथ-साथ उसको काफी रौचक भी बताते हैं। आधुनिक काल के विवेचन में नव-जागरण सम्बन्धी नई बहसों और नई दृष्टियों का समावेश करके उन्होंने अपनी फिरोल पुस्तक ‘आधुनिक हिन्दी साहित्य का इतिहास’ से आगे बढ़ने का भी प्रयत्न किया है।
साहित्येतिहास दृष्टि

बच्चन सिंह इतिहास को अतीतमुख नहीं, भविष्यमुख मानते हैं। वे इतिहास को जड़ नहीं बिंक गयासक्षण मानते हुए कहते हैं, "इतिहास का विकासक्रम प्रकृति की तरह कार्य-कारण की श्रृंखला से बंध नहीं रहता। इतिहास मनुष्य का होता है। वस्तुतः वह एक मानवीय तत्त्व है। ऐतिहासिक घटनाएं परिवेश के अलावा मनुष्य की आकांक्षाओं, निर्णय, क्रियाकलाप आदि पर भी बहुत कुछ निर्भर करती हैं।" 1

मनुष्य को अपनी विकास-यात्रा में ऐसी घटनाओं का सामना करना पड़ता है जो उसके निर्माण में होती है इन घटनाओं से भी देश और जाति का नक्शा बदल जाता है। इसलिए बच्चन सिंह मानते हैं, "इतिहास का कोई दर्शन इतना मुक्मल नहीं जिसके आधार पर उसकी पूरी समग्रता को समेटा जा सके।" 2

इसी कारण बच्चन सिंह साहित्येतिहास पर भी इसी नियम को स्वीकार करते हैं। बच्चन सिंह की दृष्टि में साहित्य के इतिहास लेखक का दायित्व दुरार है। उसे ऐतिहासिक-सामाजिक विकास तथ्यों के नेतृत्व को भी देखना पड़ता है और साहित्य के भी और दोनों में सामाजिक भी स्थापित करते चलने पड़ता है। इसी कारण वे साहित्यकार के दायित्व के बारे में लिखते हैं, "इतिहास के लेखक की तरह साहित्य के इतिहास का लेखक अर्थात में अंतर स्वतंत्र नहीं है। इतिहास लेखक की तरह उसके पास तरह-तरह के आंकड़े नहीं होते हैं। प्राचीन काल के ग्रंथों के संबंध में तो प्रामाणिक और अप्रामाणिक कहा जा सकता है पर आधुनिक काल के ग्रंथों के संबंध में तो यह भी नहीं कहा जा सकता है। अतः साहित्य के इतिहास को दूर दौर से गुजरना पड़ता है अर्थात् उसे ऐसा इतिहास लिखना पड़ता है जो साहित्यिक भी हो और ऐतिहासिक सामाजिक भी।" 3

1 बच्चन सिंह, आधुनिक हिन्दी साहित्य का इतिहास, निबंधन, पृष्ठ-1
2 भंवी, पृष्ठ-1
3 रामचरित चतुरवीर, हिन्दी साहित्य और संवेदना का विकास, आमुख, पृष्ठ-1
बच्चन सिंह ने आचार्य शुक्ल के इतिहास की एक-एक पंक्ति को ध्यान से पढ़ा है। इससे उनकी इतिहास दृष्टि बहुत प्रभावित है। वे शुक्ल जी के इतिहास को एक चुनौती मानते हैं और साथ ही यह भी स्वीकार करते हैं कि शुक्ल जी ने इतिहास से सम्बन्धित डाँच को परिवर्तित किये बगैर नया इतिहास नहीं लिखा जा सकता है। वे लिखते हैं, "नए इतिहास के लिए आचार्य शुक्ल का इतिहास एक चुनौती है। उनसे बहुत कुछ सीखने के साथ ही उनके ऐतिहासिक पैदलोक को तोड़ना होगा।" 1

संक्षेप में कुछ सूचनाओं में उनकी इतिहास दृष्टि इस प्रकार प्रस्तुत की जा सकती है-साहित्यिक इतिहास में वे अतीत और वर्तमान के द्वारा लक्ष्य सम्बन्ध को केंद्र में रखकर लिखने के पाश्चर्य हैं, "अतीत और वर्तमान के सम्बन्धों को व्यापक सन्दर्भ में देखना ही इतिहास है।" 2 इस दृष्टि को केंद्र में रखकर साहित्य का इतिहास लिखा जाना चाहिए। साथ ही वे लिखते हैं, "साहित्य को साहित्य बनाने का दायित्व उसके सौन्दर्य पक्ष को है यानी उसकी विशिष्ट रूप रचना को जिसमें शब्दों का चारा धर्मी विभास, प्रतीक विभ, मिथ कथानक आदि का सन्निवेश होता है। किन्तु इनका गहरा सम्बन्ध उस ऐतिहासिक प्रक्रिया से है, जिसमें वे निर्मित होते हैं और जिसमें वे पढ़े जाते हैं। ... नये हिन्दी साहित्य के इतिहास के एकदेशी परिप्रेक्ष्य को अन्तर्देशी परिप्रेक्ष्य में बदलना होगा।" 3

इस प्रकार बच्चन सिंह साहित्य के सौन्दर्य पक्ष के विकास को ध्यान में रखते हुए इनका जिस ऐतिहासिक प्रक्रिया में निर्माण हुआ है उसके महत्त्व को साहित्यिक इतिहास में महत्त्वपूर्ण मानते हैं। बच्चन सिंह हिन्दी साहित्य के इतिहास को अन्तर्देशी परिप्रेक्ष्य में देखने को महत्त्वपूर्ण मानते हैं। बच्चन सिंह इसी इतिहास दृष्टि से हिन्दी साहित्य को देखने का प्रयास करते हैं। बच्चन सिंह की इतिहास दृष्टि इहलीकिक, लोकतात्त्विक, धर्मनिरपेक्ष और ऐतिहासिक है। समूहों हिन्दी साहित्य की मुख्य धारा को भी वे ऐसे ही मानते हैं और इस आधार पर इतिहास लेखन की दृष्टि को प्रमुख रूप से मानते हैं।

1 बच्चन सिंह, हिन्दी साहित्य का दृश्य इतिहास, पृष्ठ-82
2 बच्चन सिंह, आचार्य शुक्ल का इतिहास पढ़ते हुए, पृष्ठ-105
3 बाही, पृष्ठ-105

374
काल-विभाजन तथा नामकरण

बच्चन सिंह हिंदी साहित्य की वास्तविक शुरुआत भक्तिकाल से मानते हैं और भक्तिकाल में दक्षिण भारत आलवार सनों की परम्परा और हिंदी कविता का संक्षिप्त जोड़कर तथा मंर-नजीर-गालिब का यथा प्रसंग चारों कर उन्होंने अपने इतिहास का दायरा व्यापक बनाया है। आधुनिक काल में भी नवजागरण सम्पन्न नई बहसों और दृष्टियों को समावेश करके इतिहास को प्रस्तुत करने का प्रयास किया है। वे इतिहास के नामकरण तथा काल-विभाजन में पूर्ववर्ती परम्परा की अपेक्षा उसको नये सिरे से व्याख्यान करने का प्रयास किया है।

प्रस्तुतीकरण की योजना

बच्चन सिंह ने भक्तिकाल में सामान्त विरोधी लोकजागरण और आधुनिक काल के साहित्य में साभान्य विरोधी घातणा सामने रखकर इतिहास को प्रस्तुत करने का प्रयास किया है। उनके इतिहास प्रयोग की शुरुआत होती है हिंदी भाषा, जाति और साहित्य से और आधुनिक काल की शुरुआत होती है उन्नीसवी शती का औपनिवेशिक भारत और हिंदी नवजागरण से। इनका वर्णन करते समय वे हिंदी जाति की सांस्कृतिक विशेषता और राष्ट्रीय संस्कृति के विभिन्न कंडों को एकीकृत करने का प्रयास करते हैं। पर वे इसमें पूरी तरह सफल नहीं हो पाते हैं। इस कारण उनके साहित्य-इतिहास में विखराव आने लगता है, और तारात्म्य का अभाव खटकता है। वे काल या युग के सामान्य परिचय के पश्चात् उस युग की धाराओं और उसके अन्तर्गत कवियों का वर्णन करते हैं। वे काल या युग में मूल प्रृवृत्ति से सम्बन्धित साहित्य के अतिरिक्त अन्य प्रृवृत्तियों से सम्बन्धित साहित्य का वर्णन भी उसी युग के अन्तर्गत करते हैं। इतिहास लेखन में बच्चन सिंह की दृष्टि ढालने पर ज्यादा है, नियमों पर कम। ऐतिहासिक प्रृवृत्तियों की विशेषताओं, समानताओं और असमानताओं के कारण उनके इतिहास में भी कुछ भ्रान्तियां हैं, पिछली अन्त में कला जा सकता है कि नई सामग्री और परिश्रम-साध्य-लेखन के नते बच्चन सिंह के साहित्य-इतिहास की उपयोगिता असंतोष्ठ है।
निष्कर्ष

इस प्रकार का जा सकता है सन् 1889 ई. में जार्ज ग्रियर्सन का हिंदी साहित्यित्वास ‘द मॉडन वर्नक्युलर लिटरेचर ऑफ हिन्दुस्तान’ प्रकाशित होकर पाठकों के सामने आया। फिशरीलाल गुल्ल ने इस पुस्तक का अनुवाद ‘हिंदी साहित्य का प्रथम इतिहास’ नाम से किया है। ये, तो हिंदी साहित्यित्वास की परम्परा की शुरूआत ‘गासंद द ताती’ के साहित्यित्वास सन्न्यास ‘इस्लाम द ला लिटरेचर ऐंडर्स ऐंडरस्टानी’ से मानी जाती है, परन्तु ग्रियर्सन ऐसे पहले साहित्यकार है जिन्होंने हिंदी साहित्य को एक निश्चित दृष्टि के आधार पर प्रतिवेदन करने का प्रयास किया है। उन्होंने हिंदी साहित्यित्वास ग्रन्थ में सम्पूर्ण सामग्री को कालक्रमानुसार रखने का प्रयास किया है। काल-विभाजन के आधार पर उन्होंने पूरी पुस्तक को यात्रा अध्यायों में विभाजित किया है। स्वयं ग्रियर्सन ने ग्रन्थ में प्रारम्भ में हिंदी के विशेष्य-प्रयास को सप्तक करते हुए लिखा है। ‘ग्रन्थ अध्यायों में विभाजन है प्रथम अध्याय सामान्यता एक कल का सूचक है। प्रथम सात अध्यायों को उन्होंने समय की धृष्टि से विभाजन नहीं किया है, बल्कि उन्हें कवियों के विशेष कार्यों की धृष्टि से बांटा गया है। शेष अध्यायों में समय को ध्यान में रखकर नियोजित किया गया है। यह इतिहास ग्रन्थ हिंदी के विशेष्य-वादी साहित्यित्वास के मूलपत का श्रेय प्राप्त कर चुका है।

नलिन बिखोच शर्मा ने अपने ग्रन्थ ‘साहित्य का इतिहास दर्शन’ में सप्तक लिखा है हिंदी साहित्य में इतिहास लेखक के लिए विशेष्य-वादी प्रणाली के विभिन्न विषयों के प्रयास के जिस श्रेय का अधिकारी पंडित रामचंद्र शुक्ल अपने को मानते हैं, वह वस्तुत ग्रियर्सन को प्राप्त है। ग्रियर्सन ने अपने साहित्यित्वास ग्रन्थ में हिंदी साहित्य को अंग्रेजी, संस्कृत और बांग्ला के साहित्यों से तुलना, मुगल दरबार तथा साहित्य रचना के अन्य केंद्री निर्देश, प्राचीन, मध्यकालीन कवियों का विवरण और रचनाकारों के व्यक्तित्व तथा उनके प्रभाव का वर्णन सार्वजनिक दृष्टि से करते हैं। इस ग्रन्थ का मूल्यांकन करते हुए अनुवादक फिशरीलाल गुल्ल लिखते हैं कि यह हिंदी साहित्य की नींव का यह पत्थर है, जिस पर आचार्य शुक्ल ने अपने सुपरिचित इतिहास का भवन निर्मित किया। आचार्य शुक्ल के इतिहास आने से पूर्व का एक युग था, जब यह ग्रन्थ अत्यधिक महत्वपूर्ण समझा जाता था।
नलिन विलोचन शर्मा इसी कारण उनके साहित्यिक ग्रंथ को युग विभाजन, पृथ्वी-निर्देश, सामान्य प्रृत्ति निरूपण तथा तुलनात्मक आलोचना और मूल्यांकन विषयी प्रयासों तथा विषयक की साहित्यिकता के कारण इसको ‘हिंदी साहित्य का प्रथम साहित्यिक इतिहास’ मानते हैं। इन सभी कारणों से ही इस ग्रंथ को प्रथम हिंदी साहित्य के इतिहास का दर्जा मिला है।

प्रियार्थन के बाद हिंदी साहित्यिकास में महत्वपूर्ण कहीं के रूप में आचार्य रामचन्द्र शुक्ल और उनका इतिहास ग्रंथ ‘हिंदी साहित्य का इतिहास’ सामाने आता है। आचार्य शुक्ल की दृष्टि केवल युग विशेष तक ही सीमित रही है और वह युग विशेष की काव्य परम्पराओं और धाराओं तथा प्रवृत्तियों का मूल्यांकन भी उसी सीमित कालखण्ड में करते हैं। आचार्य शुक्ल के युगीन दृष्टिकोण के कारण आदिकालीन सिद्ध, नाथ और जैन साहित्य का मूल्यांकन नहीं ही पाता है। यही बात हिंदी साहित्यिकास में पूर्व मध्यकाल में सन्तकाव्य और सूक्ष्म काव्य पर भी लगू होती है। रीतिकाव्य परम्परा और आधुनिक काल के छायावाद का मूल्यांकन उन्होंने अपने सृजनात्मक दृष्टिकोण से किया, जिससे इन प्रमुख काव्यधाराओं की परम्पराओं तथा प्रवृत्तियों का उचित मूल्यांकन नहीं ही पाता। आचार्य शुक्ल लोकमंगल वादी दृष्टि को ध्यान में रखकर ही किसी कवि का साहित्यिक मूल्यांकन करते हैं। आचार्य शुक्ल के सामाने कुछ विशेष मूल्य और प्रतिभाग रहे हैं-लोकमंगल और मर्मदा संभव नैतिक मूल्य तथा रसायनी प्रतिभा। आचार्य शुक्ल के सैद्धान्तिक आलोचना पद्धति निश्चय ही बेजोड़ है। आदिकाल से लेकर आधुनिक काल तक के सैकड़ों कवियों को उन्होंने अपनी सैद्धान्तिक समीक्षा की कतारी पर कसा है और उस आधार पर उनके काव्य का सम्पूर्ण मूल्यांकन किया है। साहित्यिकास में कवियों की ऐतिहासिक और सैद्धान्तिक समीक्षाएं लिखकर आचार्य शुक्ल ने जिस विचार, प्रीठीता और आचार्यत्व का परिचय दिया है वह बेजोड़ है। गिने-गिने शब्दों में ही कवियों के काव्य और काले प्रमाण का उद्धाटन कर उनके समग्र काव्य, व्यक्तित्व का विवेकण आचार्य शुक्ल ही कर सकते थे। आचार्य शुक्ल हिंदी साहित्य की इकाई स्वतंत्र रूप में स्वीकार करते हैं। आधुनिक काल का मूल्यांकन आचार्य शुक्ल लोकमंगलवादी, मर्मदावादी एवं नैतिक प्रतिभाओं की दृष्टि के
प्रतिकूल पड़ा। फिर भी कहा जा सकता है कि आचार्य शुक्ल की देन हिंदी साहित्य के
इतिहास में आलोचक, विचारक और आधुनिक दृष्टि समन्वय साहित्यकार के रूप में
सर्वाधिक विशेष है।

आचार्य शुक्ल के पश्चात् आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी हिंदी साहित्य को भारतीय
परम्परा के अविचित नवाव के रूप में देखते हैं। यही कारण है कि आचार्य द्विवेदी द्वारा
निर्देशित परम्पराओं, धाराओं और प्रवृत्तियों के निर्धारण में परम्परा साध्यक विकसात्मक रूप
के दर्शन होते हैं। आचार्य द्विवेदी ने परम्पराओं और धाराओं के मूल उद्देश्य स्रोतों की
खोज करके उसके परिप्रेक्ष्य में काल्य धाराओं की प्रमुख प्रवृत्तियाँ का विश्लेषण करके उन्हें
परम्परा के विशाल वृहत्तर क्षेत्र में देखने का प्रयास करते हैं तथा उनके सन्दर्भ को
मूल्यांकित करके उन्हें उदित स्थान प्रदान करते हैं। इसी कारण आचार्य द्विवेदी परम्परा
साध्यक दृष्टिकोण के आधार पर हिंदी साहित्य को देखने और परखने का प्रयास करते हैं।
इसी कारण द्विवेदी हिंदी साहित्य के स्रोत आदिकाल के साध्यक के पूर्व की संस्कृत,
प्राकृत, पालि, अपभ्रंश में हिंदी साहित्य की आदिकाल से रीतिसाधन तक की प्रमुख
काल्याणक आदि के स्रोत दृढ़कर इन वर्गों में अविचित परम्परा के समन्वय को भी
स्पष्ट करने का प्रयास करते हैं। यही उनके मूल्यांकन तथा दृष्टि की उल्लिख्य है। आचार्य
द्विवेदी की आलोचना दृष्टि प्रत्यासाधनिक दृष्टि से प्रेरित है। आचार्य द्विवेदी का महत्त
समालोचना और काल की दृष्टि से अध्ययन है। आचार्य द्विवेदी ने भक्तिकाल के प्रमुख
कवियो गृहस्थान और कवी के धार्मि का मूल्यांकन करते हुए हिंदी साहित्य में उनके
स्थान को निर्यातित करते हुए महत्यूर्ण मानते हैं। आचार्य द्विवेदी अपने साहित्यमितिहास में
ऐतिहासिक परम्पराओं का उल्लेख आचार्य शुक्ल की अपेक्षा अधिक उदार दृष्टि तथा
विशाल विवेचन करते हैं। वे भारतीय साहित्य को इकाई के रूप में मानकर हिंदी साहित्य
का विवेचन करते हैं। साहित्यिक परम्पराओं का जैसा स्वस्त द्विवेदी जी व्यापक तथा
विद्यार पृष्ठभूमि पर करते हैं, आचार्य शुक्ल में इस प्रकार का आयोजन कम है। हिंदी
के प्रथम उद्योगकाल को परम्परा पोषित मानकर आचार्य द्विवेदी ने इतिहास की नई
धारणा प्रस्तुत करते हैं, जो कि उनके दृष्टिकोण को प्रस्तुत करती है। आचार्य द्विवेदी
धार्मिक और सामाजिक ग्रन्थों को भी साहित्यिक विवेचन में शामिल करते हैं। द्विवेदी ने साहित्यिक तत्त्वों के अधिक महत्वपूर्ण में शामिल किया है, जैसे कि स्त्रीवाद, साहित्यिक संस्कृति, साहित्यिक पीढ़ी, जन साहित्य, इतिहास आदि। आचार्य द्विवेदी के रचनाओं में हर जगह उनकी मानवतावादी दृष्टि को देखा जा सकता है। वे शास्त्रीय साहित्य के अंतर्गत जन साहित्य के इतिहास की ओर अधिक मुक्त रहे हैं। यही कारण है कि उनके साहित्यिक तत्त्वों की अपेक्षा जन साहित्य के इतिहास की ओर अधिक मुक्त रहे हैं। इसलिए, यहाँ उनके प्रयासों का विवरण है, जो आचार्य द्विवेदी के रचनाओं की प्रति व्यक्त करता है।

आचार्य द्विवेदी के उपरान्त हिंदी साहित्यित्व की परम्परा को अग्रसर करने की दिशा में गणपतिचंद्र गुप्त के साहित्यित्व की पूर्व प्रगति साहित्य का दिशानिर्देश के प्रमुख स्थान है। इस साहित्यित्व का प्रमुख स्थान गणपतिचंद्र गुप्त का साहित्यित्व तत्त्वों के मुख्य पक्षों में साहित्य साहित्य के प्रमुख लोगों में शामिल है। उनके साहित्य तत्त्वों के प्रमुख लोगों में शामिल है। उनके साहित्यित्व की पूर्व गणपतिचंद्र गुप्त के साहित्यित्व की पूर्व गणपतिचंद्र गुप्त के साहित्यित्व की पूर्व गणपतिचंद्र गुप्त के साहित्यित्व की पूर्व गणपतिचंद्र गुप्त के साहित्यित्व की पूर्व गणपतिचंद्र गुप्त के साहित्यित्व की पूर्व गणपतिचंद्र गुप्त के साहित्यित्व की पूर्व गणपतिचंद्र गुप्त के साहित्यित्व की पूर्व गणपतिचंद्र गुप्त के साहित्यित्व की पूर्व गणपतिचंद्र गुप्त के साहित्यित्व की पूर्व गणपतिचंद्र गुप्त के साहित्यित्व की पूर्व गणपतिचंद्र गुप्त के साहित्यित्व की पूर्व गणपतिचंद्र गुप्त के साहित्यित्व की पूर्व गणपतिचंद्र गुप्त के साहित्यित्व की पूर्व गणपतिचंद्र गुप्त के साहित्यित्व की पूर्व गणपतिचंद्र गुप्त के साहित्यित्व की पूर्व गणपतिचंद्र गुप्त के साहित्यित्व की पूर्व गणपतिचंद्र गुप्त के साहित्यित्व की पूर्व गणपतिचंद्र गुप्त के साहित्यित्व की पूर्व गणपतिचंद्र गुप्त के साहित्यित्व की पूर्व गणपतिचंद्र गुप्त के साहित्यित्व की पूर्व गणपतिचंद्र गुप्त के साहित्यित्व की पूर्व गणपतिचंद्र गुप्त के साहित्यित्व की पूर्व गणपतिचंद्र गुप्त के साहित्यित्व की पूर्व गणपतिचंद्र गुप्त के साहित्यित्व की पूर्व गणपतिचंद्र गुप्त के साहित्यित्व की पूर्व गणपतिचंद्र गुप्त के साहित्यित्व की पूर्व गणपतिचंद्र गुप्त के साहित्यित्व की पूर्व गणपतिचंद्र गुप्त के साहित्यित्व की पूर्व गणपतिचंद्र गुप्त के साहित्यित्व की पूर्व गणपतिचंद्र गुप्त के साहित्यित्व की पूर्व गणपतिचंद्र गुप्त के साहित्यित्व की पूर्व गणपतिचंद्र गुप्त के साहित्यित्व की पूर्व गणपतिचंद्र गुप्त के साहित्यित्व की पूर्व गणपतिचंद्र गुप्त के साहित्यित्व की पूर्व गणपतिचंद्र गुप्त के साहित्यित्व की पूर्व गणपतिचंद्र गुप्त के साहित्यित्व की पूर्व गणपतिचंद्र गुप्त के साहित्यित्व की पूर्व गणपति
आधुनिक काल (सन् १८५७ से १९६५ तक)। उनकी मान्यता है कि किसी गुण की एक प्रमुख प्रृति को आधार बनाकर उसका नामकरण करने से उस समय की अन्य प्रृतियां संबंधित रह जाती हैं। अतः हमें उस पद्धति का अनुसरण करना चाहिए जिसमें तकनीकी समस्त प्रृतियां सहज में समाविष्ट हो सकें, क्योंकि एक ही गुण में विभिन्न लोकमतों की सन्दर्भित के लिए बृहार, भक्ति, विश्वास, नीति आदि की प्रृतियां समान्तर रूप से निरंतर चलती रहती हैं। इसी कारण उन्होंने मध्यकाल के साहित्य को शुक्ल की अपेक्षा ग्यारह काव्यावधियों में विभाजित करते हैं और उस काल की समृद्धि अन्तः संवेदना के आधार पर उनका वर्णन करते हैं। वे उनकी काव्य परम्पराओं के रूप में स्वीकार करते हुए उनके क्रमिक विकास की स्पष्ट बारे का प्रयास करते हैं।

आधुनिक काल को वे तीन वर्गों में विभाजित करते हैं—रचनात्मक, नामकरण एवं परम्परागत विकासवादी स्थापनाओं का जो वर्णन किया है वह हिंदी जगत में सफल नहीं हो पाया है। हालांकि गुप्त शैली सरस, विश्वास और विशद है निर्धारित रूप के हैं। तथ्य दृष्टिकोण व दृष्टिकोण मानविक वैज्ञानिक पद्धति पर आधारित है, फिर भी हिंदी साहित्येत्थास परम्परा में उनकी पद्धति तथा दृष्टि बहुत सफल नहीं हो सकी है। अतः हिंदी साहित्यित्वास परम्परा में उनकी पद्धति तथा दृष्टि का, काव्यावधियों के रूप में उद्कर्षण तथा स्थानों के पहचान में उसकी सार्थकता अवश्य है।

गणपति चन्द्र गुप्त के बाद रामस्वरूप चतुर्वेदी द्वारा लिखा गया साहित्यित्वास ग्रन्थ ‘हिंदी साहित्य और संवेदना का विकास’ जो १९८६ ई. में प्रकाशित हुआ है, का हिंदी साहित्यित्वास इतिहास परम्परा में महत्त्वपूर्ण स्थान है। चतुर्वेदी का साहित्यित्वास ग्रन्थ आधार रामचंद्र शुक्ल के हिंदी साहित्य के इतिहास के आदर्श पर लिखा गया है। उनका काल-विभाजन एवं नामकरण भी शुक्ल जैसा है। चतुर्वेदी की इतिहास दृष्टि में नीर-शीर विवेक की सृष्टि शक्ति है। रामस्वरूप चतुर्वेदी में अग्रभाग पाठिल्लों के साथ नीर-शीर विवेक की सृष्टि शक्ति का योग है। इनका इतिहास ग्रन्थ चतुर्वेदी जी के निरंतर कई वर्षों के
अध्ययन-अध्यापन, परिपक्व विन्दु भनन और गहन अनुसंधान की सुखद परिणाम देते हैं।
उसे आचार्य शुक्ल का अनुसरण करते हुए भी अनेक श्लोकों पर उनसे अपना मतभेद को देखते हुए निजी समाजवादित्व और मौलिकता को बरकरार रखा है। वे प्रत्येक युग की सामाजिक संवदना के प्रत्यक्ष के लिए उस युग के प्रतिनिधि रचनाकारों को चुना है।
परिणामतः इतिहास के अन्य अपेक्षित विवरणों का अभाव खलता है। आचार्य शुक्ल के बाद सशस्त्र शैली में रचित इस ग्रन्थ के अपने युग और समय में योगदान दिया है, जो अनुपम है।

रामचरित चतुर्वेदी के उपरान्त आचार्य शुक्ल के इतिहास को चुनौती के रूप में मानते हुए बच्चन सिंह 'हिन्दी साहित्य का दूसरा इतिहास' लिखते हैं जो 1996 ई. में प्रकाशित होकर पाठकों के सम्पूर्ण प्रस्तुत हुआ है। बच्चन सिंह ऐतिहासिक सामाजिक, सांस्कृतिक दृष्टि के आधार पर हिन्दी साहित्य को देखने का प्रयास करते हैं तथा हिन्दी साहित्येतिहास की पूरी परम्परा में जिसे 'आदिकाल' नाम से सम्बोधित किया है। अब वर्तमान समय में प्रकाशित तथा लोकों के बाद प्रकाश में आई हिन्दी साहित्य की सामग्री, खोजों के आधार पर उसे आप्रवाहिक मानते हैं तथा उस समय 1000 ई और 1400 ई. तक के समय का अप्रभृष्ट हिन्दी साहित्य में स्थान देते हैं। अप्रभृष्ट साहित्य का हिन्दी साहित्य की नई काव्यधाराओं पर उसके प्रभाव को स्वीकार करते हुए मध्यकाल में आचार्य शुक्ल और आचार्य द्विवेदी की रचनाओं का समन्वय करते हुए उसे सामन्त विरोधी जागरण के रूप में स्वीकार करते हैं। रीतिकाल में हिन्दी साहित्य का व्यापक तथा विस्तृत क्षेत्र में देखकर उसे स्वीकार करते हैं और हिन्दी साहित्य के दायरे का व्यापक तथा विस्तृत बनाते हैं। आधुनिक काल में विज्ञान के अलावा में नई दृष्टि का परिचय देते हुए अवधुनिक काल का स्वरूपतावर्ती काल तथा उत्तर स्वरूपतावर्ती काल में विशेषता करते हैं। बच्चन सिंह आज के साहित्यकार को दूर दौर से गुजरने वाला स्वीकार करते हैं। बच्चन सिंह ने अपने साहित्येतिहास में साहित्यकार को भी अनुपम रखते हैं और सम्पूर्ण युग के सामाजिक और ऐतिहासिक परिवेश का सम्पूर्ण प्रतिचित्रण भी करते हैं, जिस दृष्टि से उनकी महत्ता सिद्ध होती है। इतिहास लेखन में बच्चन की दृष्टि दार्शनिक पर ज्यादा रही है, नियमो
पर कम रही है, जिससे उनके साहित्यितिहास में बिखराव आने लगता है। ऐतिहासिक प्रवृत्तियों की विशेषताओं और समानताओं को सही अनुपाल में न देखने के कारण उनके साहित्यितिहास में भ्रान्तियां स्पष्ट दिखाई देती हैं, फिर भी, नई सामग्री और परिश्रम-साधन-लेखन के नाते पुस्तक की उपयोगिता असंभव है और उनकी इतिहास उपस्थित हिन्दी साहित्य के इतिहास को वर्तमान समय की समस्याओं के परिप्रेक्ष्य में देखने का प्रयास करती है, इसलिए उनके हिन्दी साहित्यितिहास ग्रन्थ का महत्त्व अनुपूर्ण है।